टंकारा समाचार

(श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट का मासिक पत्र)

अक्टूबर 2024 वर्ष 28, अंक 10 ❑ दूरभाष (दिल्ली): 23360059, 23362110 (टंकारा): 02822-287756 ❑ विक्रमी सम्वत् 2081 ❑ कुल पृष्ठ 16
ई-मेल: tankarasamachar@gmail.com ❑ एक प्रति का मूल्य 20/-रुपये ❑ वार्षिक शुल्क 200 रुपये ❑ आजीवन 1000/-रूपये

निर्वाण उत्सव पर विशेष

जाज्वल्यमान मुनित्रय-पुण्य स्मृति

❑ स्व. प्रो. श्रीमती वेद साहनी

ज्ञान प्रगति का निमित्त है प्रज्ञा। प्रज्ञा विरोध वह अपराध है जो अज्ञान से उत्पन्न होता है। परिणामतः प्रगति ठहर जाती है। 18वीं शताब्दी में आर्यावर्त्त के अज्ञान के गहनतम अंधकार ने अपनी लपेट में कस लिया था। फलस्वरूप ईश्वर बोध कराने वाले ब्रह्मा से लेकर जैमिनि तक प्रयुक्त होने वाले पठन-पाठन के समस्त आर्ष ग्रन्थ शाखाध्यायी घरानों में सुरक्षित थीं। जनसमूह ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद्, वेद नाम से पढ़े सुने जाते थे। आयुर्वेद, संगीत, वीणा वादन आदि 'शिक्षण को आश्रय प्राप्त था। संस्कृत भाषा के साथ उर्दू, फारसी का प्रचलन था। योग में हठयोग प्रविष्ठ हो चुका था। शासक देश धर्म के कर्त्तव्य से उदासीन थे, मुसलमानी राज्य था। अंग्रेज भी शनै-शनै अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे।

संवत् 1835 सन् 1778 में एक प्रज्ञाधनी बालक जिसका नाम ब्रजपाल था ने पंजाब में गंगापुर नूर महल नगर में जन्म लेकर भारत माता की आत्मा को धैर्य बन्धाया। 8वें वर्ष उपनयन संस्कार के पश्चात् शिक्षा ग्रहण करना प्रारम्भ किया। 12वें वर्ष तो व्याकरण, पंचतत्र, हितोपदेश, संस्कृत भाषण शिक्षण में दक्ष हो गए। अमरकोष कण्ठस्थ कर लिया। 13 वर्ष में माता-पिता स्वर्गगत् होने पर गृह त्याग दिया। ज्ञापन परिज्ञान की गवेषणा से अनुतप्त बालक तटानुतट नदियों पर पदक्रम रखते हुए कोलकाता के तट की भूमि पर्यन्त परिक्रमा में 30 वर्ष व्यतीत कर दिये। इस तीस वर्षों में 21 वर्ष गायत्री जप किया। व्याकरण में नैपुण्य इतना प्रबल था कि व्याकरण का कोई छिद्र उनसे बच न पाय। यह सत्य है दण्डी जी दृश्य चक्षु नहीं थे, वे प्रज्ञा चक्षु थे। उनका मस्तिष्क और मेधा वेद और वैदिक शास्त्रों के अलौकिक प्रकाश के उद्दीप्त था **'सर्व वेद पारिषदं हीदं शास्त्रम्'** यह (व्याकरण) शास्त्र वेद की सब परिषदों और सब चरणों में अध्ययनार्थ अनिवार्य है। प्रचीन भारतीय ऋषियों की मनीषा द्वारा प्राप्त वेद के ज्ञान विज्ञान का ताला इसी शास्त्र की चाबी से खुलता है। यही चाबी गुरु विरजानन्द जी ने अपने प्रिय शिष्य दयानन्द को वेद और शास्त्रों का रहस्य जानने और खोजने के लिये दी थी। इसी शास्त्र के तलस्पर्शी, सर्वांगीण गम्भीर ज्ञान की प्राप्ति के आधार पर गुरु विरजानन्द जी ने काशी के पण्डितों को **'कथं काशी विदुष्मती'** कह कर ललकारा था। इसी सिंह गर्जना को सुन विरोधी भाग खड़े हुए अर्थात् अवाक् रह गए।

ऋषि दयानन्द जब आए वे समय के दास बन कर नहीं आए अपितु समय को अपना दास बनाने हेतु आए थे। महापुरुषों का यही तो जीवन में उपलब्धि होती है। यह हम समझते हैं कि हमें जमाने के अनुसार चलना है। महापुरुष जमाने की गर्दन पकड़ कर उसे अपने अनुसार चलाते हैं। वे खुद नहीं बदलते जमाने को बदलते हैं। एक समाज शास्त्री की लेखनी में कितनी सत्यता है 'यह जीवन एक ललकार है, एक चौलेंज है, आह्वान है। साधारण हम जैसे लोग इस ललकार को सुन, जीवन संग्राम में कायरतापूर्वक भाग खड़े होते हैं, हम तो जमाने

(शेष पृष्ठ 15 पर)

दीवाली रंग लायेगी

हृदय की दूरियों को ये मिटा करके ही जायेगी।
दिवाली रंग लायेगी, दिवाली रंग लायेगी।

उदय हो ज्ञान का सूरज, उजाला जग में फैलेगा।
अविद्या नाश तब होगा, अंधेरी दूर जायेगी।

जो जलते हैं परस्पर देख सुख समृद्धि को हरदम।
ये उनके मन में अविरल, प्यार की गंगा बहायेगी।

न होगा कोई भी लम्पट लुटेरा, चोर कर्मचारी।
जगद्गुरु देश भारत को ये फिर से चमचमायेगी।।

वैभव सम्पदाओं के ये बादल खूब बरसेंगे।
सभी निश्चिन्त होवेंगे, खुशी घर-घर समायेगी।।

अटल विश्वास जागेगा, सुकर्मो की लगन होगी।
किम् कर्तव्य विमूढ़ों को, ये कुछ करके दिखायेगी।।

-पं. विजयपाल आर्य

दीपावली की हार्दिक शुभकामनाएँ- सम्पादक

'टंकारा समाचार' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

सत्य के मार्ग से हम सुखी हो सकते हैं

- पदम्श्री डॉ. पूनम सूरी

प्रधान, डी.ए.वी. कॉलेज प्रबन्धकर्त्री समिति एवम् आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, ट्रस्ट प्रधान महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा (जन्मभूमि)

हमारा प्रयास होना चाहिए कि हमारे अंदर भी हमेशा दूसरों का भला करने की प्रवृत्ति जन्म ले और जीवन भर हम इस सत्य रूपी मार्ग पर चलते रहें। इसके लिए हमें पहले स्वार्थी बनना होगा। चौंकिए नहीं, इससे तात्पर्य है कि पहले हमें स्वयं को सत्याचरण पर चलाने की आदत डालनी होगी, जो व्यक्ति अपना खुद का भला कर सकता है, वह ही दूसरों का दु:ख दूर कर उन्हें सुखी बना सकता है। इसके साथ ही हमें देखना होगा कि कहीं दूसरों का भला करते-करते हमारे अंदर अहंकार जन्म न ले ले। जो लोग झूठी वाहवाही में फूल कर अपने आपको बहुत बड़ा समझने लगते हैं, वे पतन की ओर बढ़ना शुरु कर देते हैं। आजकल अक्सर देखा जाता है कि लोग भलाई भी जगदिखाई के लिए करते हैं। वास्तविक भलाई तो वह है, जो आप करें और किसी को उसका पता भी न चले। अक्सर बहुत से लोग परमार्थ के नाम पर भी ऐसे काम करते हैं, जिनसे उनकी दानवीरता का प्रदर्शन तो होता है, पर उससे किसी दूसरे का कोई भला नहीं होता। दूसरों को घाटा देकर साधा हुआ स्वार्थ आगे चलकर अपना ही नुकसान करता है। असलियत खुलने पर लोग उस व्यक्ति से सावधान हो जाते हैं। लोकसेवी, परोपकारी, संत, फकीर और महापुरुष अपने जीवन की कुछ ऐसी ही नीति बनाते हैं। यही वजह है कि ऐसे परोपकारी सत्यवादी लोगों का हर जगह सम्मान होता है, जो कि धनवान व्यक्ति बहुत धन खर्च करके भी हासिल नहीं कर सकते। ऐसे महामानवों को समाज के हित के बल पर ही सौभाग्य भरे अवसर मिलते हैं। लोकविश्वास जो जितनी मात्रा में हासिल कर सका, वह उतना ही ऊंचा उठा और आगे बढ़ा है। यह सत्य एवं परमार्थ का ही प्रतिफल है। बीज से विशाल वृक्ष इसी आधार पर विकसित होता है। यह जीवन इधर-उध र पटकने के लिए नहीं है। जीवन दिशाहीन जीने का कोई प्रयोजन नहीं, क्योंकि जिसकी दिशा और लक्ष्य नहीं, वह अवश्य ही कठिनाइयों की आंधियों में घिरकर अंतत: जीवन से ही हाथ धो बैठता है।

जीवन जीने का एक लक्ष्य होना चाहिए। एक विचार होना चाहिए सत्य को पाने का, सत्य से जीने का। जो सत्य से भटक जाता है, वह खो जाता है। यह जीवन परमात्मा की अमानत है। परमात्मा ने इसे जीने की एक दिशा दी है। जो उससे भटका वह सत्य से दूर चला गया। सत्य स्वयं परमात्मा है। मैं और अहंकार ही जीव के दुख के कारण है।

एक घटना याद आती है। एक विमान चालक आकाश की बुलंदियों में तीव्र गति से जा रहा था। अचानक आकाश में तेज हवा चलने लगी। जिस गति से विमान जा रहा था, उसके सामने उतनी ही गति से हवा आ रही थी। विरोधी दिशा में चलने वाले अंधड़ के चलते पायलत को लग रहा था, विमान आगे नहीं बढ़ रहा। विमान चलता हुआ भी आकाश में स्थिर-सा लग रहा था। जैसे ही विरोधी दिशा से आ रही हवा धीमी हुई, पायलट को लगा, विमान कुछ आगे बढ़ रहा है। जब विरोधी दिशा से आने वाली हवा पूरी तरह बंद हो गई तो उसे लगा विमान अपनी पूरी गति से आगे बढ़ रहा है। क्या जीवन भी ऐसा नहीं है? क्या इंसान भी ऐसा ही जीवन नहीं जा रहा? मैं और अहंकार के चलते लगता है, वह जीवन जी रहा है लेकिन वस्तुत: जीवन ठहरा हुआ है, निश्चय है, अहंकार ही तो असल में दुख का कारण है। अहंकार ही रोग है, जो जीव को परमात्मा से दूर रख रहा है। सत्य के मार्ग से हटकर ही जीव दु:खी है। सत्य के मार्ग पर चलने वाले को न तो अहंकार हो सकता है, न ही वह दु:खी होता है क्योंकि परमात्मा को पाने के मार्ग में दु:ख है ही नहीं।

एक संन्यासी को संन्यस्त हुए काफी समय हो गया। अनेक शिष्य बन गए। जहां जाते, शिष्यों की भीड़ उमड़ पड़ती। हजारों की संख्या में लोग प्रवचन सुनने आते। वह दूसरों को त्याग करने का उपदेश देते, कहते, त्याग से ही ज्ञान मिलता है, त्याग से ही मन प्रसन्न रहता है। त्याग से अहंकार नहीं आता। जब अहंकार नहीं आएगा, जीव ब्रह्म हो जाएगा क्योंकि जीव है ही ब्रह्म। लेकिन बातचीत में वह कह रहे थे कि संन्यासी होने से पहले उनकी अपार धन संपदा थी। ऐश्वर्यशाली जीवन जी रहे थे। सब कुछ छोड़ दिया और संन्यासी बन गए। इतना कहते-कहते उनके चेहरे पर ऐसे भाव पैदा हुए जैसे उन्होंने यह सब त्याग कर बहुत बड़ा तीर मारा है। आंखों में एक चमक सी पैदा हुई, लगा अपने त्याग की चर्चा करते-करते उनका मन प्रफुल्लित हो उठा। लगा जैसे यह मन से त्याग नहीं कर पाए। ऐसा होता तो कुछ साल पहले की घटना को दोहराने से उनकी आंखों में अहंकार की चमक पैदा न होती। दूसरों को दुनियावी पदार्थों के मोह में न पड़ने का उपदेश देने वाला ही यदि स्वयं इस मोह का त्याग न कर सके तो दूसरों को यह शिक्षा देने का क्या लाभ? जो दूसरों को अपरिग्रह को शिक्षा देता फिरता है और अपने पास धन का अंबार लगाता जा रहा तो दूसरों को धन के लाभ से दूर रहने की शिक्षा का क्या लाभ? यह ज्ञान का अहंकार नहीं तो क्या है?

- पद्मश्री डॉ. पूनम सूरी जी के साथ अनऔचपारिक बैठक में चर्चा के कुछ अंश

महर्षि दयानन्द जन्म स्थान टंकारा में बोधोत्सव का आयोजन

आर्य जनों को यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता होगी कि प्रतिवर्ष की भांति आगामी वर्ष में महर्षि दयानन्द जन्म स्थान टंकारा में शिवरात्रि के पावन पर्व पर भव्य ऋषि बोधोत्सव का आयोजन 25, 26 फरवरी 2025 (मंगलवार, बुधवार) को किया जायेगा। आपसे निवेदन है कि आप यह तिथियॉ अभी से अंकित कर लेवें और इन तिथियों में अपनी आर्य समाज एवं अपनी संस्था का कोई कार्यक्रम न रखकर उक्त समारोह में अधिक से अधिक आर्य जनों के साथ टंकारा पधारने का कार्यक्रम बनायें। आपके आवास एवं भोजन की व्यवस्था टंकारा ट्रस्ट की ओर से होगी। **-ट्रस्ट मन्त्री**

श्री राम पूजनीय नहीं अनुकरणीय हैं

विजयदशमी का त्यौहार प्रतिवर्ष आता है। सभी राम भक्त इसे उत्साह से मनाते हैं यह दिन राम की रावण पर विजय दिवस के रूप में मनाया जाता है। परन्तु साथ ही अन्याय पर न्याय की विजय, दुष्टता पर सज्जनता की विजय और अधर्म पर धर्म की विजय का सन्देश भी देता है परन्तु आज इस दिवस को ऐसे नाटकीय रूप में आयोजित किया जाता है कि इस दिवस के पीछे वास्तविक भावना सामने नहीं आती। रामलीला का आयोजन कर उसमें राम द्वारा चमत्कारी घटनाओं को जादूगरी का रूप दे दिया जाता है। सारे शहर में झांकियों में राम के इसी रूप को उजागर किया जाता है। विजय ऐसे नहीं मिल जाती है। राम एक बलवान शक्तिशाली व्यक्तित्व थे। अगर हम राम को ईश्वर का रूप मानकर चलें तो इस विजय का महत्व ही घट जायेगा। चमत्कार से मानव को क्या सीख मिल पायेगी, मानव को क्या प्रेरणा मिल पायेगी? केवल यही राम तो ईश्वर थे और वह सब कुछ कर सकते थे, इसलिए उनके लिए कहीं भी विजय प्राप्त कर लेना सम्भव था। हम ऐसे राम का अनुकरण नहीं करेंगे और न ही कर सकते हैं।

आज हो क्या रहा है? राम हमारे लिए आदरणीय बनकर रह गये है। पूजा के योग्य व्यक्ति, उपासना, भक्ति एवं श्रद्धा के पात्र बने हुए हैं। राम का हर कार्य करिश्मा और चमत्कार बनकर रह गया है। वस्तुतः राम हमारे लिए अनुकरणीय हैं। वे मानव थे, महापुरुष थे। अगर हम सही में राम भक्त हों तो हम उनके जीवन को अपने लिए उतारने का प्रयत्न करें, तभी हम विजयी हो सकते हैं। हमने ऐसा न करके सर्वत्र हार खाई है। सैकड़ों के मुकाबले हजारों ने, हजारों के मुकाबले में लाखों ने। राम का सच्चा अनुयायी हारेगा कैसे? वह जीतेगा, विजयी होगा, क्योंकि राम का सारा जीवन संघर्षमय रहा है। राक्षसों से असुरों से, दानवी शक्तियों से संघर्ष से भरा पड़ा है। पर कहीं हार नहीं, सदैव विजय और सफलता। इसका रहस्य क्या है। इस विजय का क्या आधार है। इन सफलताओं का रहस्य ही शक्ति है। राम शक्तिशाली थे, बलवान् थे, विश्वामित्र के साथ गये तो उनके आश्रमों को दुष्टों से मुक्त कराया। अगर जनकपुरी गये तो अपनी शक्ति और साहस से सीता का वरण किया। वनों में पहाड़ों पर 14 वर्ष केवल अपनी शक्ति और बल पर ही व्यतीत किये। रावण सीता का हरण छल और कपट के आधार पर ही कर सका क्योंकि वह राम की शक्ति एवं बल से परिचित था। रावण स्वयं बहुत शक्तिशाली और बलवान था लेकिन फिर भी राम की शक्ति से भयभीत था। राम ने अपनी सामूहिक शक्ति का परिचय एक बार फिर दिया जब रावण और कुम्भकर्ण जैसे महाबली को युद्ध में धूल चटा दी, जिस विजय के उपलक्ष्य में यह त्यौहार मनाया जाता है।

राम की इस शक्ति का रहस्य क्या था? रावण कोई कम शक्तिशाली नहीं था, जिस प्रकार हमारे देश ने अपने पराक्रम एवं शक्ति से अपने आपको सोने की चिड़िया कहलाने योग्य बना था, उसी प्रकार रावण ने भी लंका को समृद्ध किया और सोने का बना लिया था। ऐसे प्रतापी बलवान् राजा से लोहा लेने राम जा रहे थे, जिसके पास मजबूत सेना और योग्य वीर थे। राम को भी सेना की आवश्यकता थी, अस्त्र-शस्त्रों की आवश्यकता थी। सेना के लिए घोड़े, हाथी एवं युद्ध लम्बा होने पर सेना के रहने और भोजन की आवश्यकता थी। राम चाहते तो अयोध्या में भरत को कहकर सारी व्यवस्था कर सकते थे। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। भरत दल बल सहित सहायता को आ जाता, लेकिन ऐसा करने से राम का पुरुषार्थ उजागर कैसे होता? राम का रामत्व कैसे स्थापित होता। उन्होंने अपने बल, पुरुषार्थ और साहस पर ही भरोसा किया और अयोध्या से हजारों मील दूर अपरिचित प्रदेश में अपरिचित लोगों में शक्ति संचय का कार्य प्रारंभ किया और वह भी विनय करके नहीं अपनी शक्ति के बल पर अत्याचारी बालि का वध करके अपनी शक्ति का परिचय दिया। कहते हैं कि शक्ति के गिर्द ही शक्ति जुटती है। ऐसा राम ने कर दिखाया। राम और रावण में भेद को देखें तो राम चरित्रवान थे और रावण की दुर्बलता थी चरित्रहीनता। राम में एक और गुण बहुत उजागर होकर आया था। वह था लोगों को अपना बनाने का गुण। यहां तक कि शत्रु के भाई तक को अपना बना लिया। रावण इसके विपरीत था। वह अपने भाई को भी अपना नहीं बना सका। यही नहीं सीता को सुरक्षित समाज सहित वापस करने की सलाह रावण की धर्मपत्नी एवं भाई कुम्भकरण ने भी दी थी। क्या कारण था कि रावण के अपने घर वाले भी उससे विपरीत धारणा रखते थे। रावण अपनी दुष्टता और घमंड में इतना बह चुका था कि अपने इन्हीं नकारात्मक आचरण से अपनी शक्ति को संभाल नहीं सका और प्यार सद्भावना से ओत-प्रोत राम की शक्ति बढ़ती गई। इस संदर्भ में अगर हम आत्म अवलोकन करें तो राम भक्त होते हुए भी राम पूजन का करते हुए भी क्या हम रावण का अनुकरण नहीं कर रहे हैं? यही है मेरे लेख का केन्द्र बिन्दु। राम के जीवन के एक और महत्वपूर्ण सद्गुण की ओर संकेत करना आवश्यक समझता हूं, वह है राम की त्यागमयी प्रवृत्ति। बाली का वध कर राज्य स्वयं नहीं रखा, सुग्रीव को दे दिया जबकि बाली वध का सारा श्रेय राम को जाता है। सुग्रीव शक्तिशाली होते हुए भी बाली का सामना नहीं कर पा रहा था। राम की बुद्धि एवं युद्ध के कारण ही सब संभव हो पाया। इसी प्रकार रावण का वध कर लंका का राज्य विभीषण को सौंप दिया और अयोध्या उसी हाल में लौटे जिस हाल में वहां से चले थे, वही वनवासी रूप। सारे उपहार इत्यादि उनके साथ नहीं थे। दो-दो राज्य जीतकर भी उनके सिर पर राजमुकुट नहीं था। यही था राम का त्यागमय पुरुषार्थ। राम को और उनके द्वारा अर्जित विजय को अगर हम इस दृष्टिकोण से देखें तो विश्वास है कि राम भक्त होने का कुछ लाभ हमें मिलेगा। हम कुछ सीख सकेंगे और अपने जीवन और समाज का कुछ कल्याण कर सकेंगे। राम को केवल पूजा का ही विषय न बनाया जाये बल्कि उनक कार्यों का अनुकरण भी किया जाये।

अजय टंकारावाला

टंकारा ट्रस्ट द्वारा चलाई जा रही गतिविधियों के लिए आप निम्न प्रकार से सहयोग कर सकते हैं

परिवार के एक बालक को गुरुकुल में पढ़ाएं अथवा गुरुकुल के एक ब्रह्मचारी का वार्षिक व्यय 20,000/- रुपये देवें

❑❑❑

गौ-दान : महा-दान–उपदेशक विद्यालय के ब्रह्मचारियों की पर्याप्त मात्रा में दूध की व्यवस्था हेतु एक गऊदान करें अथवा 75,000/- रुपये की सहयोग राशि गऊ हेतु देवें।
(तीन व्यक्ति मिलकर भी 25,000/- प्रति व्यक्ति भी दे सकते है।)

❑❑❑

गऊ पालन एवं पोषण हेतु 12,000/- रुपये का हरा चारा एवं पौष्टिक आहार की व्यवस्था (एक गऊ का वार्षिक व्यय)

❑❑❑

1000/- रुपये की सहयोग राशि देकर स्वामी दयानन्द सरस्वती जन्मभूमि के सहयोगी सदस्य बनें। यह राशि आपको प्रतिवर्ष देनी होगी। इसलिए अपना पूरा पता अवश्य लिखवायें।
जो दान देवें उसके अतिरिक्त यह 1000/- रूपये राशि अवश्य देवें।

❑❑❑

श्री ओंकारनाथ महिला सिलाई-कढ़ाई केन्द्र की बेटियों द्वारा बनाए गए सामान को क्रय करके सहयोग कर सकते हैं।

❑❑❑

ब्रह्मचारियों के एक सत्र का भोजन 20,000/- रुपये की सहयोग राशि देकर।

❑❑❑

ऋषि बोधोत्सव पर 1,50,000/- रुपये की सहयोग राशि देकर एक सत्र के भोजन में सहयोग

❑❑❑

20,000/- रुपये की सहयोग राशि प्रति वर्ष किसी एक दिन का (जन्मदिवस अथवा स्मृति दिवस) ब्रह्मचारियों का भोजन देकर सहयोग कर सकते है।

❑❑❑

ब्रह्मचारियों के पहनने हेतु सफेद कपड़ा एवं दैनिक प्रयोग में आने वाली वस्तुएं देकर

टंकारा ट्रस्ट को दी जाने वाली राशि आयकर की धारा 80 G के अन्तर्गत मान्य है।
एवम् C.S.R. दान प्राप्त करने हेतु पंजीकृत।

यह दान नकद/चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर द्वारा **''श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा''** के नाम दिल्ली कार्यालय आर्य समाज (अनारकली) मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-110001 अथवा श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा जिला-मौरबी-363650 (गुजरात) के पते पर भिजवाकर पुण्यार्जन करें। आप सहयोग राशि **खाता न. 4665000100001067, पंजाब नैशनल बैंक, IFSC CODE PUNB0015300** में जमा करा सकते हैं। जमा की गई सहयोग राशि, तिथि एवम् पते की सूचना मो. 09560688950 पर देवें।

–:निवेदक:–

योगेश मुंजाल
कार्यकारी प्रधान

अजय सहगल
मन्त्री (मो. 9810035658)

उपकार्यालय: आर्य समाज अनारकली मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-110001 सम्पर्क: 09560688950 (व्यवस्थापक)

वेदों में विधिवत जीवन चर्या

❑ डॉ. विजेन्द्र पाल सिंह

वेद ऐसा ज्ञान का सागर है जिसमें मानव जीवन को श्रेष्ठ निर्माण हेतु सम्पूर्ण ज्ञान है। वेद, उपवेद, उपनिषद् एवं ब्राह्मण ग्रन्थ तथा दर्शन शास्त्रें में सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय एवं मनुष्य के जीवन को सुख व आनन्दमय बनाने का ज्ञान है। ईश्वर, जीव व प्रकृति क्या है? सृष्टि का कर्ताधर्ता कौन है? ऐसे प्रश्न जो सामान्य जन की समझ से बाहर हैं, उत्तर की तो बात अलग है सबका समाधान वैदिक ग्रन्थों में हैं।

वेदानुसार जीवन जीने की जो व्यवस्था है, अत्यन्त सुन्दर व श्रेष्ठ है। व्यक्ति, परिवार, समाज यदि वेदानुसार ही अपने जीवन में आचरण करें तो यह निश्चित है कि कहीं भी किसी प्रकार का भय, शोक, ईर्ष्या, क्लेश, लोभ आदि नहीं हो सकता। सत्याचरण से मानव के अन्दर से समस्त बुराइयां दूर हो जाती हैं। महर्षि दयानन्द ने वेद का प्रचार इसलिए ही किया कि सभी वेदानुसार आचरण करेंगे तो संसार में सुख शांति स्थापित हो सकेगी। **कृण्वन्तो विश्वमार्यम्** का स्वप्न साकार हो सकेगा।

वैदिक ज्ञान जीवन जीने की कला की शिक्षा देता है। बच्चे के जन्म से लेकर सौ वर्ष तक व मृत्यु पर्यन्त सोलह संस्कारों की शिक्षा है जिनसे समय-समय पर जीवन में शारीरिक व मानसिक रूप से गुणों में वृद्धि होती रहती है। सर्वप्रथम निषेक संस्कार को करना होता है। यह उचित तो तभी है जबकि वेद वेदांगों को पढ़ पूर्ण ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर गृहस्थाश्रम में प्रवेशकरे और श्रेष्ठ सन्तान हेतु विधिवत संस्कार करे। तीसरे माह में पुंसवन संस्कार को करना होता है। वट पत्र व गिलोय को दक्षिण नासा पुट में सुंघाना होता है। गिलोय से शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है, तंत्रिका तंत्र अर्थात् बुद्धि को बल देने वाला व क्रियाशील बनाता है। ब्राह्मी का सेवन कराते हैं। ब्राह्मी बुद्धि वर्द्धक व शीतल होती है। क्रोध आदि गुण नहीं आते। इसके पश्चात सीमन्तोपनयन जिससे गर्भ पुष्ट रहे। जात कर्म संस्कार में स्वर्ण शलाका से जिह्वा पर ओ३म् लिखना, तत्पश्चात निष्क्रमण, अन्न प्राशन, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन विवाह संस्कार आदि जो संस्कार हैं उनका समय निश्चित होता है और जीवन के प्रत्येक मोड़ पर उनसे एक नई दिशा मिलती है, उद्देश्य मिलता है, जीवन का मार्ग प्रशस्त होता है, स्वयं के जीवन में श्रेष्ठता आती है, साथ में समाज का उपकार होता है, मानवता के गुणों का संचार होता रहता है, ज्ञान की वृद्धि होती रहती है। श्रीकृष्ण, राम, भरत, विश्वामित्र, मनु, अर्जुन, भीम, चन्द्रगुप्त, चाणक्य, विदुर, गार्गी, मैत्रेयी, मदालसा जैसे विद्वान व विदूषियां इन्हीं संस्कारों से महान हुए।

संस्कार मनुष्य के जीवन की व्यवस्था की उन्नति के मार्ग पर ले जाते हैं और बुराइयों तथा बाधाओं को पास नहीं आने देते। अपने मन व इन्द्रियों पर लगाम कसी रहती हैं, धर्म के प्रति दृढ़ता बनी रहती है। ऋषियों पर ऐसी व्यवस्था अन्यत्र कहीं नहीं मिलती।

उधर वर्ण व आश्रम व्यवस्था सम्पूर्ण समाज को एक नियम में चलाती रहती है। जिसका गुण कर्म जैसा हो जैसी उसकी शिक्षा हो वैसा ही वर्ण होगा और जिस कार्य में अभ्यस्थ है वही कार्य करे। प्राचीन काल में धनुर्वेद, आयुर्वेद, अथर्ववेद, गन्धर्ववेद एवं चारों वेदों को पढ़कर जो पढ़ाने में निपुण हो वह ब्राह्मण, शस्त्र विद्या में पारंगत हो क्षत्रिय एवं जो कृषि व्यापार में अच्छा कार्य करता हो, वह वैश्य होता था और इस प्रकार से गुण कर्म व स्वभाव से वणधर्म का निर्धारण होता था। आज की भांति ऐसा नहीं था जैसा कि ब्राह्मणी से जो उत्पन्न होगा वही ब्राह्मण होगा। इससे जो जातिवाद ऊंचनीच, छुआछूत की समस्या नहीं रहती थी, भेदभाव नहीं होता था। ऐसी सुन्दर व्यवस्था थी और वेद में वर्णित व्यवस्था का जो रूप दिया है वह व्यद्रि व समाज में संगठन, प्रेम तथा प्रतिष्ठा को बढ़ाता था। ऐसी ही आश्रम व्यवस्था है जिससे व्यक्ति के जीवन की उन्नति तो होती है प्रतिष्ठा, ज्ञान, सम्पन्न, भौतिक व आध्यात्मिक उन्नति सभी का समावेश है। शारीरिक आत्मिक व सामाजिक बल आश्रम व्यवस्था से बढ़ता है। माता को प्रथम शिक्षक बताया है। शिशु को माता ही वर्ण का उच्चारण सिखाती है। उसकी वाणी को शुद्ध व मधुर बनाती है। उसके पश्चात् आचार्य द्वारा ज्ञान मिलता है। ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मज्ञान, वेदज्ञान प्राप्त हाता है। शिक्षा से परिपूर्ण हो बालक बड़ा होकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है। वहां श्रेष्ठ सन्तानतों को जन्म दे समाज का उपकार करता व परिवार का पालन पोषण करता है। वही सन्तान बड़े होकर विद्वान अधिकारी व समाज के श्रेष्ठ व्यक्ति बनते हैं। उपकार करने वाले होते हैं। तत्पश्चात् वानप्रस्थ जहां परिवार व समाज सभी का कार्यभार रहता है ज्ञान का प्रकाश कर समाज को श्रेष्ठ मार्ग पर ले जाना होता है और वानप्रस्थ के पश्चात अपने परिवार से दूर होकर समस्त संसार व समाज ही उनका परिवार हो जाता है, ऐसा सन्यासाश्रम होता है।

इस प्रकार वर्ण, आश्रम एवं संस्कार इन व्यवस्थाओं से मानव जीवन का प्रवाह नियमित हो जाता है। वहां कोई किसी प्रकार की त्रुटि व कमी नहीं रह जाती है। पूरा समाज वर्ण व आश्रम व्यवस्था पर चलता रहे तो जिस प्रकार से नदी वेद एक समान बना रहता है, दिन-रात का चक्र एक नियमित गति से चलता रहता है, उसी प्रकार से वेदानुसार आश्रम वर्ण व्यवस्था से प्रत्येक मनुष्य का जीवन व जीवन शैली सुन्दर व श्रेष्ठ तथा व्यवस्थित हो जाती है। आश्रम व्यवस्था के अनुसार चलकर सभी सामाजिक बुराइयां व दोष दूर हो जाते हैं।

आजकल के समय में ऊपर से नीचे तक भ्रष्टाचार, झूठ, बेईमानी, अनाचार, शोषण, ऊंच-नीच, भुखमरी, दुराचार, ईर्ष्या आदि इसी कारण से हैं क्योंकि जीवन का उद्देश्य ही नहीं है और न ही समाज व जीवन की कोई व्यवस्था ही है। जब चाहे सोकर उठो, जब चाहो सोओ। जब चाहो पढ़ो, जब चाहे विवाह करो, न युवावस्था का कोई उद्देश्य है न बाल्यावस्था में कोई शिक्षा। वैदिक धर्मानुसार आयुर्वेद में मनुष्य की दिनचर्या का विधान वैज्ञानिकता के आधार पर बताया है। प्रातः उठकर तब से रात्रि पर्यन्त क्या-क्या कार्य करना उचित हैं, पूर्ण रूपसे वर्णन किया है। शौच जाना, स्नान, वस्त्र धारण करना, किस ऋतु में कैसे वस्त्र हों, भोजन कैसा हो, किस ओर मुख करके बैठना उचित है, किस ऋतु में स्थान पर कैसा क्या भोजन करें, विरुद्ध आहार क्या होता है। सोते समय सिर किस दिशा में हो, रात्रि को भोजन कैसा हो, सम्पूर्ण वर्णन दिया है।

वेदानुसार पूरे जीवन का विधान अत्यधिक विधिवत रूप से है। मनुष्य के जीवन सम्बन्धी कोई कमी शेष नहीं रह जाती। जीवन सम्बन्धित सभी समस्याओं को ध्यान में रखा गया है। वेदानुसार विधिवत जीवन यापन की श्रेष्ठ व्यवस्था है।

वेदानुसार जीवन अत्यंत व्यवस्था पूर्ण है वेद के अनुसार चल जाना और सफलता के सीढ़ी चढ़ते जाना। यह स्वर्ग के समान जीव है इसका हम अनुसरण करें और इसको ही हमारे प्राचीन ऋषि मुनि आचार्य स्त्री पुरुष सभी करते थे इसी से **कृण्वन्तो विश्वमार्यम्** का स्वप्न सफल हो सकता है। संस्कार, वर्ण व आश्रम व्यवस्था से हम शतायु होकर स्वस्थ रहते हुए भी जी सकते है।

-2 चन्द्रलोक कॉलोनी, खुर्जा

हम होंगे कामयाब एक दिन विजय घोष करते आगे बढ़े

❑ मनुदेव 'अभय' विद्यावाचस्पति, एम.ए.

एको बहूनामसि मन्य ईडिता विशं युद्धाय सं शिशाधि।
अकृत्तरुक्त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्मसि॥

अथर्ववेद 4.31.4

प्रत्येक देश में चतुरंगिणी सेना अर्थात् पैदल, घुड़सवार, शस्त्रों से सुसज्जित सेना, वायु सेना तथा नौ (सामुद्रिक) सेना। प्राचीन काल में बड़े-बड़े नगरों के बाहर परकोटे (किलो की चहारदीवारी) बने रहते थे। कभी-भी ये नगर ऊंची पहाड़ियों के समतल भागों में भी बसाये जाते थे। शत्रु द्वारा आक्रमण होने पर राज्य की राजधानी की रक्षा का भार सेना और सेनापति का होता था। परकोटे के चारों ओर गहरी खाइयां और गड्ढे खोद दिये जाते थे।

प्रस्तुत मन्त्र में वेद भगवान युद्ध में विजयी होने की एक रहस्यमयी विधा पर प्रकाश डाल रहे हैं। सेना का पति बहुतों का विश्वस्त और आदरणीय होता है। युद्ध केवल सैनिकों अथवा अस्त्र-शस्त्रों से ही नहीं लड़ा जाता। युद्ध में विजय का श्रेय बहुत कुछ सेना-संचालन पर निर्भर रहता है। यदि सेना का संचालन बुद्धिपूर्वक किया जाये तो विजय अवश्यम्भावी है। युद्ध-संचालन भी एक कला है। युद्ध में जय-पराजय सेना के संचालक के बुद्धि-चातुरी पर निर्भर रहता है।

क्रोध और मन्यु-इस वेद में युद्ध संचालक को यहां 'मन्यु' कहा गया है। मीठे रूप में मन्यु को क्रोध भी कहा गया है। किन्तु यदि गहराई से इन दोनों पर विचार करें तो इनका अन्तर सरलता से समझ में आ जायेगा। क्रोध-क्रोधावस्था एक प्रकार से 'तमस' अंधेरा सा होता है। इस अवस्था में क्रोध अज्ञात-अंधेरे में घिर जाता है और बुद्धि का नाश हो जाता है। ऐसी विषय परिस्थिति में क्रोधी कोई भी मूल्यवान वस्तु को तोड़कर फेंक देता है। जिसका विवेक-बुद्धि ज्ञान लुप्त हो गया हो वह कौन सा अनिष्ट नहीं कर सकता। अवसर आने पर वह स्वयं आत्महत्या कर सकता है। इसके विपरीत वह दूसरों की अकारण हानि भी कर सकता है। ऐसे क्रोधी से न केवल परिवार तथा पड़ोसी अपितु पत्नी और सन्तानें भी डरकर दूर रहना पसंद करती हैं। क्रोध का परिणाम पछतावा ही होता है। क्रोध का ज्वर उतरने पर उसे गहरा पछतावा होने लगता है।

मन्यु-यह भी दो पकार का होता है। क्रोध का सात्विक रूप 'मन्यु' कहलाता है। इसमें विवेक नष्ट नहीं होता। व्यक्ति सचेत और होश में रहता है। इस अवस्था में विवेक बना रहता है और किसी भी भूल को सुधारने में तत्परता विद्यमान रहती है। मन्यु के समय तेजस्विता कम नहीं होती। इस वेद मन्त्र में सेनापति को युद्ध के लिए जोश और होश के साथ प्रेरित किया गया है। यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि हमारे शास्त्रों में काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष आदि ईर्ष्या इन छः दुर्गुणों की मानसिक भावनाओं की कटु आलोचना की गई है। यदि विवेक द्वारा इन मानसिक भावनाओं को सकारात्मक रूप में लेकर उपयोग किया जाये, मित्र बना लिया जाये, तो इनसे अनेक लाभ प्राप्त हो सकते हैं। वेद में पुरुष को 'इन्द्र' कहा गया है। इन्द्र वही होता है जो इन्द्रियों और उनकी भावनाओं पर नियंत्रण कर सके।

सेनापति उत्साहित रहे-सेनापति की यह विशेषता होती है कि वह युद्ध-विद्या विशारद हो। आधुनिक शब्दों में उसमें काम्बिंग टेलेंट होना चाहिए। युद्ध विद्या में प्रशिक्षित सेनापति ही युद्ध का संचालन सफलतापूर्वक करता है। यहां उसे उत्साहित करते हुए कहा जा रहा है कि **एको बहू नामसि मन्यु ईडिता** अर्थात् हे मन्यो! तू अकेला ही बहुतों की पूजा करने वाला है। यहां सेनापति को 'मन्यु' सरीखे गम्भीर शब्द से संबोधित किया गया है। यहां मन्यु का मूल अर्थ है-मनन करना, विचार और अभिमानपूर्वक क्रोध। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि क्रोध के तामस रूप को हटाकर उसे सतोगुण रूप में परिवर्तित करना है। मनुष्य में जोश और होश दोनों रहता है।

विजय संकेत- इन पंक्तियों के लेखक के पिताश्री एक सैनिक थे और उनके ज्येष्ठ भ्राता भी सेनाधिकारी थे। वे समय-समय पर परिजनों को बताया करते थे कि युद्ध के समय सेना मैदान में लड़ती है परन्तु उसका मनोबल ऊंचा बनाये रखने के लिए प्रजाजनों तथा समाज का सहयोग बहुत अपेक्षित है। पुरानी पीढ़ी के वृद्ध को स्मरण होगा कि द्वितीय महायुद्ध (1940-1945) के समय अंग्रेजी सेना अनेक स्थान से हटने लगी थी परन्तु समाज में भावनात्मक बल और धैर्य बनाये रखने के लिए भारत में V फॉर विक्ट्री और व्यक्ति के द्वारा ज्येष्ठा और सर्जना को खड़ा कर V बनाया जाता था। यह एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग था। इसलिए युद्ध न केवल अस्त्र-शस्त्रों से जीते जाते हैं, परन्तु प्रजाजन तथा समाज के विचार और भावनाएं भी सेना को बल प्रदान करती हैं। उन उदाहरणों से सिद्ध होता है कि विजयी सेना और उसके सेनापति का मनोबल ऊंचा उठाये रखना चाहिए तथा प्रजाजनों के नेताओं द्वारा हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इसलिए वेदमन्त्र ने ठीक ही निर्देश दिया है कि सेनापति की व्यवस्था में अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

विशं विशं युद्धाय सं शिशाधि- प्रजामात्र को युद्ध के लिए एक समान उत्तेजित और सतर्क रहना चाहिए समाज के सभी वर्गो को आवश्यकता पड़ने पर शत्रु को पराजित करने तथा सेनापति और बहादुर सैनिकों का मनोबल ऊंचा रखने में सहयोग हेतु सदैव तत्पर रहें। हमारे जयघोष भी अधिक उत्तेजक और भावपूर्ण हैं। उनमें जोश, बलिदान तथा अमरत्व की भावना की झलक होना चाहिए। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है-

ऊंचा मनोबल- पहले जहां तक होता था कि युद्ध की स्थिति ही उत्पन्न न हो, क्योंकि युद्ध से दोनों पक्षों को जनहानि के साथ ही सामाजिक समस्याएं तथा उत्पादन जैसे कृषि, उद्योग-धंधे, कुटीरोद्योग आदि प्रभावित होते हैं। यदि युद्ध अपरिहार्य ही है तो इसकी तैयारी बड़े उत्साह से ही जाती थी। वीर क्षत्राणियां अपने पुत्र, पौत्र तथा पतियों को राजतिलक देकर उनकी आरतियां उतारकर विजय की कामनाएं प्रकट करती थीं।

त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्मसि- इससे युक्त होकर हम तेजस्वी घोष करते हैं। गीता में घोष का उल्लेख है-दोनों पक्षों में युद्ध प्रारम्भ होने के पूर्व घोष तथा सेना के विविध वाद्ययंत्रों के द्वारा पहले बिगुल बजाया जाता था। घोष होने से दोनों को जोश आता था और वे मरने-मारने पर उतारु हो जाया करते थे। यहां यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि युद्ध का नायक सेनापति मननशील है, विचारवान है, युद्ध की नीति और शैलियां जानता है। हमें ऐसे सेनापति पर विश्वास और गर्व है। शत्रु को पराजित करने के लिए पूरा राष्ट्र उत्साहित है, उसमें भी अपार जोश है। राष्ट्र सेना को हर प्रकार का सहयोग देने के लिए तैयार है। विजय की प्रभाती को देखने का उत्सुक है। ऐसे वातावरण में घोष-विजयघोष, युद्ध की ललकार, सेना की रणभेरी बजाने में क्या विलम्ब हो सकता है? हम सदा विजयी हों, राष्ट्र अखंड बना रहे, जय भारत।

- 'सकिरण', अ/13, सुदामा नगर, इन्दौर

सांस्कृतिक आलोक का प्रतीक दीपावली पर्व

❒ स्व. अशोक कौशिक

भारत का प्रत्येक प्राणी जन्मना ही 'भद्रकाम' है। हम नित्य-प्रति परमात्मा से प्रार्थना करते हैं-**'दुरितानि परासुव, यद् भद्रं तन्न आसुव'।** अर्थात् प्रभो! हमारे दुरितों को दूर करो ओर जो हमारे लिए भद्र है, मंगलमय है, कल्याणकारी है, उसको हममें समाहित कर दो। प्रख्यात पुरुषार्थ चतुष्टय-'धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष' में भी मोक्ष को मुक्ति नहीं, छुटकारा नहीं, अपितु परमपद की प्राप्ति माना है। प्राणी की देह नश्वर है, आत्मा नहीं। आत्मा अजर है, अमर है। हमारा यह भद्रकामी देश और इसके देशवासी इसी पुरुषार्थ चतुष्टय की साधना के लिए नित्य प्रति पर्व एवं उत्सव का आयोजन करते हैं। वर्ष के 365 दिनों में वह कौन सा दिन है कि जिस दिन कोई पर्व न हो। पर्व, उत्सव और त्यौहार हमें जीवन्तता प्रदान करते हुए हममें परस्पर स्नेह, सौहार्द और सद्भावना का संचार करते हैं। पर्वो की इस अटूट श्रृंखला में मुकुट-मणि का स्थान कदाचित् दीपावलि को प्राप्त है। दीपावली मात्र एक पर्व अथवा त्यौहार नहीं अपितु पर्व पुंज है। कार्तिक कृष्ण एकादशी अर्थात् रमा एकादशी से प्रारम्भ कर गोवत्स द्वादशी, धन्वन्तरि त्रयोदशी, नरक चतुर्दशी एवं हनुमान जयन्ती, कमला जयन्ती एवं दीपावली, अन्नकूट गोवर्धन विश्वकर्मा प्रतिपदा और भ्रातृ अथवा यम द्वितीया तक, पूरे सात दिन तक, यत्र, तत्र, सर्वत्र दीपमालिका का प्रकाश दृष्टिगोचर होता है। यह श्रेष्ठ पर्वपुंज भारतीय संस्कृति का अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रसंग है। जिसमें आनन्द और प्रकाश की शाश्वत विजय का बड़ा मार्मिक इतिहास जगमगा रहा है।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अर्थात् अन्धकार से प्रकाश की ओर चलने की प्रेरणा देने वाले इस पर्व में हमारी समस्त गतिमान संस्कृति का जाज्वल्यमान इतिहास प्रतिबिम्बित होता है। प्रतिवर्ष दीपमालिका के रूप में हम अपने इसी इतिहास और परम्परा की पुनरावृत्ति करते हैं।

यह पर्व एक ओर जहाँ हमारे व्यापक जीवन-दर्शन का ज्ञानोज्जवल प्रतीक है, वहीं यह उस रम्यलोक-कल्पना की भी अभिव्यक्ति है, कि जिसके अनुसार लक्ष्मी कार्तिक मास की अमावस्या को विष्णु की वैभवशाली शय्या को त्याग कर खेतों की हरी-भरी पगडंडियों पर, गांवों की संकरी गलियों में भ्रमण करती हुई प्रत्येक किसान की कुटिया के द्वार पर जाकर आश्रय खोजती है। राज-लक्ष्मी के पूजन की अपेक्षा इसे हम सदैव जन-लक्ष्मी का ज्योति पर्व के रूप में मनाते आए हैं। लक्ष्मी समग्र रूप से पुरुषार्थ चतुष्टय की अधिष्ठात्री देवी है। उसकी अर्चना उपासना समाज के सभी अंगो के लिए अभ्युदय एवं निःश्रेयस् का परम साधन मानी गई है।

संसार में तेज को ही सार माना गया है। तेज ही 'श्री' का मुख्य स्वरूप है। तेज विहीन होने पर स्वयं मनुष्य हत-श्री कहलाता है। प्रभु ने हमें तीन तेज प्रदान किये हैं-सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार कार्तिक मास में सूर्य के तुला राशि में स्थित होने के कारण वह निस्तेज हो जाता है और अमावस्या के दिन चन्द्रमा के तेज का सर्वथा अभाव हो जाता है। तब एकमात्र तृतीय तेज, अर्थात् अग्नि ही इस समय उपलब्ध रहता है। इस वैज्ञानिक तत्त्व के आधार पर दीपावली के दिन लक्ष्मी की उपासना में अग्नि की प्रमुखता मानी गई है।

कार्तिक अमावस्या के दिन ही धर्मराज यम ने जिज्ञासु नचिकेता को ज्ञान की अन्तिम वल्ली का उपदेश किया था। सावित्री को पुत्रवती होने का वरदान भी यम ने कार्तिक अमावस्या के दिन ही प्रदान किया था। इसी प्रकार यमरूपी अन्धकार के भीतर ब्रह्म-ज्ञान और अनन्त सौभाग्य के दो-दो पुण्य प्रसंगो का उद्गम हुआ। दीपोत्सव के साथ धर्मराज यम का यही सम्बन्ध है। जिसके अन्तराल में भारतीय संस्कृति की मूल आत्मा जगमगा रही है। मृत्यु स्रोत से अमरत्व एवं पुण्य जीवन का उद्रेक भारतीय संस्कृति का प्राण है। **'मृत्योर्मा अमृतं गमय।'** दीपोज्जवलन के साथ ही यह दीप निर्वाण का भी पर्व है। ऐसा पुण्य पर्व, जो क्षण-भंगुर जीवन की अस्थिर दीप शिखायें बुझा कर भी महाकाश में ऐसी पुंजीभूत ज्योतियां विकीर्ण कर गया जिनसे मानवता जीवन प्राप्त कर सकी।

पर्व-पुंज के उल्लेख में नरक-चतुर्दशी का उल्लेख किया गया है। प्राचीनकाल में घोर अत्याचारी नरकासुर ने इतना उत्पात मचाया हुआ था कि प्रजा त्राहि-त्राहि पुकार रही थी। प्रजा के त्राण के लिए सुदर्शन चक्रधारी श्रीकृष्ण महाराज ने इसी चतुर्दशी को उसे नरक की यात्रा पर प्रस्थित किया था। अतः नरक चतुर्दशी का यह पर्व नरकासुर से त्राण का पर्व प्रसिद्ध हुआ। दीप-निर्वाण के प्रसंग में, अनुश्रुति के अनुसार महाभारत के अद्वितीय राजनेता, गीता-ज्ञान के अनन्य गायक, नरकासुर समेत शतशः राक्षसों से पीड़ित प्रजा के त्राण प्रदाता, योगेश्वर श्रीकृष्ण ने दीपावली के दिन ही अपना पार्थिव दीप बुझा कर आत्मा का अशेष दीप प्रज्ज्वलित किया था। महात्मा बुद्ध के विषय में भी यह विश्वास प्रचलित है कि उनका निर्वाण दीपावली के दिन ही हुआ था। जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी को भी दीपावली के दिन ही निर्वाण प्राप्त हुआ था। क्रान्तदर्शी महर्षि दयानन्द ने भी दीपावली के दिन ही अपनी इह-लीला पूर्ण की थी। तीर्थराम से रामतीर्थ बने ओर कालान्तर में 'राम बादशाह' के नाम से प्रख्यात, स्वामी रामतीर्थ का स्वर्गारोहण भी दीपावली के दिन ही हुआ था।

मृत्यु और जीवन की संधि का यह समाहित प्रसंग भारतीय संस्कृति की विशेषताओं का अनुपम प्रतीक है।

यह है हमारी दीपावली की सांस्कृतिक परम्परा, जिसमें पार्थिव दीप बुझे और हमने उनकी पावन स्मृतियों को अमरत्व प्रदान करने के लिए शताब्दों-सहस्राब्दों से मृत्तिका के दीप प्रज्ज्वलित किये। ज्योति का विसर्जन अन्धकार में नहीं प्रकाश में ही होना चाहिए, आनन्द का पर्यवसान आनन्द में ही होना चाहिए। यही भारतीय संस्कृति का चरमोत्सर्ग है।

प्रतिवर्ष दीपावली के अवसर पर भारतवर्ष के एक कोने से दूसरे कोने तक प्रकाशपुंज बिखेरने वाला यह पर्व हमारे देश की उस महान् सांस्कृतिक परम्परा का प्रतीक है जिसके प्राणोद्रेक से हम प्रत्येक युग में मानव संस्कृति पर छाने वाले सघन अन्धकार को पराजित करके ज्ञान एवं सत्य की पुण्य ज्योति विकीर्ण करते आये हैं। असत्य की उपेक्षा कर सत्य को समेटने की पिपासा, मृत्यु को ठुकरा कर जीवन को अमरत्व देने की संधि और अन्धकार को पराभूत कर ज्योति की दीपशिखायें प्रज्ज्वलित करने का साहस सर्वप्रथम इस भारतभूमि पर, इस आर्यावर्त में ही जागृत हुआ।

- 385, साईट-1, विकासपुरी, नई दिल्ली-18

प्रभु का क्रीडा-स्थल है यह संसार

❒ पं. देवनारायण भारद्वाज

यह संसार प्रभु का क्रीडा-स्थल है और मनुष्य मात्र के लिए यह कर्मस्थल है। परमात्मा तो सत्-चित्-आनन्दस्वरूप है ही। वह हमको भी सत्ता व चेतनता के साथ आनन्द की ओर प्रेरित करता रहता है। लोग प्रायः कहते हैं कि हर काम खेल की भावना से करना चाहिए। खेल से हमें तीनों वस्तुएँ सहज ही प्राप्त हो जाती हैं। कोई भी खेल क्यों न हो, चाहे शारीरिक खेल हो, या मानसिक, नृत्य-नाटक, गायक आदि, सभी में निर्धारित नियम प्रक्रिया का पालन करना होता है। खेल अकेले नहीं अनके लोगों के साथ मिलकर खेला जाता है और जीत हो या हार, खेलने में सुख की प्राप्ति होने लगती है। ऐसा ही कुछ बोध हमें वेद भगवान् प्रदान करते हैं।

उस प्रभु के खेल के मैदान, यह जल-रजकण वाली पृथ्वी, फूलों से लदे वृक्ष, वायु एवं किरणों से परिपूर्ण आकाश और सूर्य लोक भी हैं। प्रभु के क्रीड़ांगन असंख्य और बड़े विस्तीर्ण हैं। प्रभु खिलाड़ियों को उनकी कर्म-क्षमता एवं कर्मफल व्यवस्था के अनुसार बल प्रदान करते हैं। जो खिलाड़ी इस व्यवस्था से हटकर छल-कपट, उत्तेजक औषध या मादक द्रव्य ग्रहण कर खेल खेलता है, वह न केवल क्रीडांगन से बाहर ही कर दिया जाता है, दण्डित भी होता है। परमेश्वर प्रभु खिलाड़ी भी हैं, निर्देशक भी हैं और निर्णायक भी हैं। उसका अनुसरण करके ही हम किसी भी खेल में सफल होते हैं। कई लोग किसी को रूलाकर हंसते हैं। उनका यह खेल उन्हें नरक में एक दिन जब धकेल देता है तब उनके रूदन का पारावार नहीं रहता है।

अधिष्ठाता अविनश्वर वही प्रभु हमको सुख देने वाली और मान करने वाली माता हैं। **'स पिता स पुत्रः'** (ऋ 1.16.10) वही सबका जनक पालक पिता है, नरकादि दुःखो से पवित्र व रक्षा करने वाला है, धारण, उत्कर्ष एवं मारण करने वाले सभी देवों के रूप में वही विद्यमान है। उनमें पितर, आचार्य, अतिथि, उपदेशक, अध्यापक सभी पञ्चजन आ जाते हैं। वही चेतन ब्रह्म परमात्मा सब जनों के जीवन एवं नामकरण का हेतु है। वेद के अनेक मन्त्रों में उक्त तथ्य का अनुमोदन किया गया है। **'सुमित्रः सोम नो भव'** (ऋ. 1.91.12) प्रभु हमारे अच्छे मित्र हों। **'स नो बन्धुर्जनिता स विधाता'** (यजु. 32.10) वही प्रभु हमारे भाई, जनक एवं विधायक हैं। इतना ही नहीं, वह दुराचारियों के शत्रु भी हैं। **'यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः'** (यजु 25.13) के अनुसार उसकी छाया विद्वान विज्ञानी लोगों के लिए अमृतमयी मोक्षसुखदायक है और दृष्टजनों के लिए बारम्बार मरण एवं जन्म रूप महाक्लेशदायक है। जब मनुष्य यह समझ लेता है कि वह इस जीवन के कर्म-क्रीडांगन में उस प्रभुरूपी निर्देशक, निर्णायक एवं महापात्र के कार्यो को कर रहा है तो उसके सभी कार्य पात्र धर्म के अनुकूल होने चाहिए। कोई पात्र, नायक या नायिका कितना ही अधिक प्रसिद्ध हो, अकूत पारिश्रामिक पाता हो, उसे अपना कार्य निर्देशक के संकेत के अनुसार ही करना पड़ता है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो निर्देशक उसकी पुरावृत्ति 'फिर से करो' (रिटेक) कह कर करता रहता है, जब तक कि वह उचित रूप प्राप्त नहीं कर लेता है। यही कर्मफल व पुनर्जन्म का चक्र है, जो हर मनुष्य या प्राणिमात्र को जन्म-जन्मान्तर तक झेलना पड़ता है।

प्रभु-प्रेरित विद्वान एवं विदुषी। आप हम लोगों के लिए उत्तम पति, उत्तम भार्या, प्रशंसित धन और उत्तम शिक्षा से धर्म-आचरण की प्राप्ति कराइये। 'महाअभिज्ञवा यमत' (साम. 615) इस मार्ग में किसी स्तर पर भी चूक हो जाने पर उस प्रभु की प्रताड़ना का सामना करना पड़ता है।

परमात्मा ही हमारे लिए बड़े बलों का देने वाला है, वही कर्मानुसार हमें नचाने वाला है। वही लय-ताल-स्वरभंग होने पर अर्थात् कर्मफल बन्धनों से घुटनों के बल टिकने पर हमें बाध्य कर देता है। संसार में व्यवहार करने वाले गृहपति की जो आकांक्षा **'वामं गृहपतिं नय'** (ऋ 6.53.2) में ध्वनित होती है वही **'अग्ने नय सुपथा'** (यजु. 40.16) में व्यक्त होती है। प्रभु हमें सुन्दर कल्याणकारी मार्ग पर आगे ले चलें। हमें कुटिलतायुक्त पाप कर्म से बचायें, प्रज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करायें। लेखक यहाँ 'नय' शब्द पर मुग्ध है। जो संस्कृत धातुकोश के अनुसार (नय गतो-नयते-प्रणयते' जाना, हिलना, पहुँचना एवं रक्षण करना अर्थ प्रकट करता है। प्रभु के अधिकार में 'नय' है तो हमारे अधिकार में अनुनय-विनय है। प्रभु से हम विनय करने के अधिकारी तभी होते हैं, जब हम समझ लेते हैं कि वे 'नय' आगे-आगे चलने वाले नायक हैं। हम उनके (अनु-नय) पीछे-पीछे चलने वाले सहायक हैं। हम तुम्हारे अनुसार ही चलते हैं और (विनय-वि+नय) अपने इस 'नय' को 'विशेष नय' बनाकर उसमें अपनी कृतज्ञता एवं नम्रता को जोड़कर अपनी मांग को प्रार्थना एवं पुरुषार्थ रूपी दो पार्श्ववर्त्ती मुद्रा के रूप में ढाल देना चाहते हैं। अकर्मण्य नहीं, कर्मवीर बनकर नम्रता पूर्वक तुम्हारे मार्ग का अनुसरण करेंगे, तब तो तुम हमें अपने बल की सहाय प्रदान कर ही दोगे। यह हमारी गतिशीलता इतनी समर्थ होगी कि सन्तति हमसे तुम्हारी तुलना करने लग जायेगी और जैसा हम अपनी सन्तति के लिए करते हैं वह तुमसे भी वैसा ही करने को कहने लगेगी। यथा **'स नः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनो भव'** (1.1.9) **तथा 'मातेव यद् भरसे पप्रथानो'** (ऋ 5.15.4)

देखिये न याचक जगत्पिता से इस संसारी माता-पिता की भाँति उत्तम ज्ञान पदार्थ आदि देकर कल्याणकारी होने की याचना कर रहा है। ऐसा इसलिए तो सम्भव हुआ, कि इस संसार के पिता और उसके पुत्र ने प्रभु के 'नय' को अपने जीवन में 'अनुनय-विनय' बनाकर एकाकार कर दिया है। जो प्रभु है वह पिता है और जो पिता है वह प्रभु है। संसारी पिता नहीं रहता है तो प्रभु-पिता तो रहता ही है। पुत्र उसी के 'नय' से अपने 'अनुनय-विनय' को पूर्ण करता रहता है।

विद्या से विनय, विनय से पात्रता, पात्रता से धन, धन से धर्म व धर्म से सुख प्राप्त होता है। चाल-ढाल व अनुकरण इतनी सुन्दरता एवं समग्रता से किया जाये तो नकली भी असली लगे। दृश्य में दिखाये जाने वाले कलाकार के आँसू तो नकली होते हैं, जिन्हें देखकर दर्शक अपने असली आँसू बहाने लगते हैं। एक नाटक में खलनायक किसी युवति पर अत्याचार करता हुआ दिखाया गया। वहाँ बैठे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने दुःखी होकर उन्हें जो कुछ भी मिला, वही उठाकर उस खलनायक पर फेंककर मार दिया। दृश्य पूर्ण होने पर खलनायक आकर विद्यासागर जी के चरण स्पर्श करने लगा। इसलिए नहीं कि वह अपने द्वारा किये गये अत्याचार के लिए क्षमा माँग रहा था, प्रत्युत इसलिए कि वह विद्यासागर की प्रतिक्रिया के लिए धन्यवाद प्रस्तुत कर रहा था, और इसे अपने अभिनय की सफलता मान रहा था। जैसे संसार अभिनय की सफलता मान रहा था। जैसे संसार अभिनय में पूर्वाभ्यास एवं सावधानी चाहिए, वैसे ही संसारी लोगों को प्रभु के 'नय' को प्राप्त करने के लिए अपने 'अनुनय-विनय' के पात्रता धर्म का सार्थक अभ्यास एवं अनुकरण करना अनिवार्य है।

एमआईजी पी-45, अवन्तिका कालोनी रामघाट मार्ग, अलीगढ़

ईश्वर के सत्यस्वरूप और ज्ञान का प्रकाश सर्वप्रथम वेदों द्वारा किया गया

❐ मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून

संसार की अधिकांश जनसंख्या ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करती है। बहुत बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी किसी न किसी रूप में इस सृष्टि को बनाने व चलाने वाली सत्ता के होने का संकेत करते हुए उसे दबी जुबान से स्वीकार करते हैं। हमारा अनुमान व विचार है कि यदि यूरोप के वैज्ञानिकों ने वेदों को पढ़ा होता और उनके सत्य अर्थों को जाना होता तो वह कदापि ईश्वर के अस्तित्व में सन्देह न करते अपितु वह सच्चे योगी व धार्मिक होते जैसे कि वैदिक युग में भारत के ऋषि व वैज्ञानिक होते थे। संसार में प्रायः सभी प्रमुख मतों में ईश्वर को किसी न किसी रूप में माना जाता है। परमात्मा ने मनुष्य को ज्ञान प्राप्ति के लिये बुद्धि दी है और इसके साथ ही सृष्टि के आरम्भ में चार वेदों का ज्ञान भी दिया था। यह चार वेद और इनके सत्य वेदार्थ, सृष्टि को बने हुए 1.96 अरब व्यतीत हो जाने के बाद, आज भी उपलब्ध हैं जिनका वर्तमान समय में मुख्य श्रेय ऋषि दयानन्द और उनकी स्थापित संस्था आर्यसमाज को है। किसी मत व सम्प्रदाय, आस्तिक व नास्तिक, का कोई भी अनुयायी यदि वेदों को निष्पक्ष भाव व सत्यान्वेषण की दृष्टि से पढ़ता है तो वह वेदों की प्रत्येक बात को सत्य स्वीकार करता है। ऐसा विश्वास व निश्चय वेदों में निहित सत्य रहस्यों को पढ़कर व आत्मा में उनका निश्चय होने पर होता है। हमने भी निष्पक्ष भाव से वेदों को देखा व पढ़ने का प्रयत्न किया और हमें ऋषि दयानन्द की वेदों के विषय में कही गई सभी बातें सर्वथा सत्य अनुभव होती हैं।

ऋषि दयानन्द ही नहीं अपितु उनसे पहले वेदों की सत्यता व वेदों की ईश्वर से उत्पत्ति का उल्लेख प्राचीन काल के ऋषियों के ग्रन्थ ब्राह्मण, उपनिषद, दर्शन, मनुस्मृति, रामायण एवं महाभारत आदि में भी मिलता है। इन ग्रन्थों को पढ़कर, व वेद की मान्यताओं के विरुद्ध प्रक्षेपों को छोड़कर, मनुष्य वेदों को ही मनुष्य जाति की सबसे उत्तम व महत्वपूर्ण निधि पाता है। यदि ऐसा न होता तो ऋषि दयानन्द ने सत्यान्वेषण करते हुए वेदों को प्राप्त कर सन्तोष न किया होता और वह अपने जीवन का एक-एक पल तप व त्यागपूर्वक अहर्निश पुरुषार्थ करते हुए वेदों के प्रचार में व्यतीत न करते। ऋषि दयानन्द का पुरुषार्थ, उनका ज्ञान, उनकी तर्कणा शक्ति, सत्य को जानने के प्रति उनकी गहन निष्ठा, उनका समर्पण तथा वैदिक मान्यताओं पर सभी विद्वानों की शंकाओं के निवारण के लिये उनका सबको आमंत्रित करना, सबकी शंकाओं का निराकरण करना, देश के अनेक भागों में जाकर खुलकर प्रचार करना तथा सबको चर्चा व वार्तालाप सहित शास्त्रार्थ के लिये भी आमंत्रित करना, वेदों में ज्ञान की सत्यता का प्रमाण ही सिद्ध करते हैं। यदि वेद पूर्णतया सत्य न होते तो ऋषि दयानन्द ऐसा कदापि न कर पाते। आज की स्थिति पर विचार करें तो आज भी मत-मतान्तरों में यह साहस नहीं है कि वह दूसरे मत मुख्यतः वेदमत के अनुयायी आर्यसमाज के विद्वानों के साथ अपने मत की बातों व मान्यताओं की सत्यता एवं प्रमाणिकता की पुष्टि के लिये शंका समाधान, चर्चा व शास्त्रर्थ कर सकें। इससे सन्देश स्पष्ट है कि वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक व ग्रन्थ हैं तथा सत्यान्वेशी मनुष्यों के लिए वेदानुकूल मान्यतायें ही मान्य व स्वीकार्य हैं। मत-मतान्तरों की जो बातें वेदों के अनुकूल नहीं है वह अस्वीकार्य, अकरणीय व विश्वास व आचरण करने योग्य नहीं है।

वेदों ने सृष्टि के आरम्भ से ही सभी मनुष्यों व विद्वानों को उसके किसी भी सिद्धान्त व वचन पर शंका करने का अधिकार दिया है। वेदों पर की जाने वाली शंकाओं व प्रश्नों का उत्तर हमारे विद्वान व ऋषि सृष्टि के आरम्भ से शंकालुओं व भ्रान्त लोगों को देते आये हैं और सामान्य मनुष्यों के लाभार्थ उन्होंने उपनिषद, दर्शन एवं मनुस्मृति जैसे ग्रन्थ लिखकर सभी प्रकार के भ्रमों का निवारण किया है। आज ऋषि दयानन्द के अनुयायियों को ईश्वर के सत्यस्वरूप सहित उसके गुण, कर्म व स्वभाव के विषय में किसी प्रकार की भ्रान्ति नहीं है। वह संसार के किसी भी मनुष्य का ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति के विषय में शंका समाधान कर सकते हैं व उन्हें वेद के सिद्धान्तों को समझा सकते हैं। वेदों से ही जिज्ञासुओं की सभी शंकाओं का निवारण होता है। ऐसी सभी शंकाओं का संग्रह कर ऋषि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में समाधान कर दिया है। सत्यार्थप्रकाश को पढ़कर मनुष्य की सभी जिज्ञासाओं व शंकाओं का समाधान हो जाता है। इससे मनुष्य संतुष्ट व तृप्त होता है। सत्यार्थप्रकाश को पढ़कर मनुष्य की ईश्वर की प्राप्ति हेतु साधना में प्रवृत्ति होती है। साधना साध्य की प्राप्ति के लिये की जाती है। साधक साधना द्वारा ही साध्य को प्राप्त होता है। यदि किसी मत व सम्प्रदाय में साधक को अपने इष्ट व साध्य ईश्वर की प्राप्ति न हो तो इसका अर्थ होता है कि साधना में अथवा साधक के सत्प्रयत्नों में कमी। सभी मतों को अपने अपने मतों का अध्ययन कर यह जानने का प्रयत्न करना चाहिये कि उनमें से उनके किन-किन विद्वानों ने ईश्वर वा संसार की रचना व पालन करने वाली शक्ति ईश्वर को ठीक-ठीक जाना है व उसका साक्षात्कार किया है? ईश्वर को मानना व उसकी सिद्धि न होना प्रशस्त कार्य नहीं है। यहां यह भी विचार करना आवश्यक है कि ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी है। वह हमारी आत्मा के भीतर व बाहर भी विद्यमान है। अतः उसकी प्राप्ति का स्थान हमारी आत्मा ही हो सकती है।

मठ, मन्दिरों व नाना मतों के धर्मस्थलों में ईश्वर प्राप्त नहीं होता। वह तो साधक को साधक के हृदय में विद्यमान आत्मा में ही ईश्वर का चिन्तन्, मनन्, जप, स्वाध्याय, ध्यान् व समाधि द्वारा प्राप्त हो सकता है। ईश्वर की प्राप्ति के लिए वेद, उपनिषद, दर्शन, प्रक्षेप रहित मनुस्मृति, सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, आध्यात्म विषयक वैदिक विद्वानों के ग्रन्थों का स्वाध्याय ही सहायक एवं लाभदायक होता है। इनकी सहायता से मनुष्य ईश्वर को जान पाता व जान जाता है। साधक को योग साधना द्वारा ईश्वर को प्राप्त करना अर्थात् उसका साक्षात् करना शेष रहता है जिसके लिये उसे योगदर्शन में बातयें गये मार्ग का अनुसरण करना होता है। ऋषि दयानन्द व वैदिक काल के सभी ऋषि वेद निहित योग साधन करते हुए समाधि अवस्था को प्राप्त कर ही ईश्वर को प्राप्त करते थे। आज भी ईश्वर की प्राप्ति का यही मार्ग समूचे विश्व की जनता के सामने है। यही एकमात्र मार्ग है। इससे भिन्न अन्य किसी मार्ग से ईश्वर का साक्षात्कार नहीं हो सकता। हम इस मार्ग की जितनी भी उपेक्षा करेंगे, उससे हम ईश्वर के निकट जाने के स्थान पर उससे दूर ही होंगे। ईश्वर को प्राप्त करना है तो हमें सच्चा निष्पाप मानव बनना होगा। हमें अपने भोजन एवं आचार-विचारों को पूरी तरह से शुद्ध व पवित्र करने होंगे।

(शेष पृष्ठ 11 पर)

आइये! विचारें

❐ स्वामी विवेकानन्द सरस्वती (गुरुकुल प्रभात आश्रम)

प्रधानमन्त्री नरेन्द्र मोदी की यह उत्कट इच्छा रहती है कि जन-जागरण हो, राष्ट्र-जागरण हो, जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों से अधिक अपने कर्त्तव्यों पर ध्यान दे। इसके लिए राष्ट्रवाद के महान् उद्घोषक स्वामी दयानन्द सरस्वती की द्विजन्म-शताब्दी, आर्यसमाज की स्थापना के डेढ़ सौ वर्ष तथा स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान-शताब्दी को समारोह-पूर्वक मनाने को माध्यम बनाकर सर्वत्र राष्ट्रीय जागरण का कार्यक्रम हो, ऐसा प्रयास करने का विचारा। जिससे राष्ट्र की परिभाषा वास्तव में भूखण्ड मात्र नहीं, अपितु भाषा, संस्कृति, सभ्यता, इतिहास, परम्परा-इनकी सुरक्षा के प्रति जन-जन के अन्दर भावना जागृत हो। उनकी इस योजना के कारण स्थान-स्थान पर आर्यसमाज के द्वारा कार्यक्रम हो रहे हैं। साहित्य के अतिरिक्त अन्य प्रचार के कार्यक्रमों को अपनाया जा रहा है। पत्र-पत्रिकाओं में आर्यसमाज के उज्ज्वल अतीत का साकल्येन यशोगान होता है। यह उचित ही है क्योकि जब तक अपने गौरवमय अतीत का बोध न हो, तब तक मनुष्य आगे कैसे बढ़ेगा? क्योकि इतिहास हमें यह बताता है कि अतीत में हम किस प्रकार आगे बढ़े? तथा अतीत की लुटियों को स्मरण करते हुए उनका परिमार्जन करने की प्रेरणा प्राप्त होती है, किन्तु जिन कारणों से आर्यसमाज **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** के लक्ष्य तक नहीं पहुंच पा रहा है, उन कारणों पर ध्यान अत्यल्प गया है। उन कारणों को दूर करने के लिए ही स्वामी श्रद्धानन्द आदि मनीषियों ने सन् १९०९ में सार्वदेशिक सभा का निर्माण किया तथा उस समय के संचालित सभी गुरुकुल एकसूत्र में बँधें ऐसा करने का प्रयास किया, किन्तु अहम्मन्यता एवं व्यक्तिगत संस्थावाद के भाव के कारण परस्पर में आरोप-प्रत्यारोप, यहाँ तक कि न्यायालयों में अभियोग तक किये गए। इस दुरवस्था को दूर करने के लिए कुछ आर्य सज्जनों ने पुनः विचार किया और दशम सार्वदेशिक आर्य महासम्मेलन सन् १९६८ में हैदराबाद में जो मनाया जा रहा था, उसमें मंच पर ही यह प्रस्ताव रखा गया कि आर्यसमाज में परस्पर अभियोगवादी वृत्ति समाप्त हो और सभी अपने अभियोगों को वापस ले लें। इस कार्य के लिए आनन्द स्वामी जी को अध्यक्ष बनाया गया और उनके निर्देशन में इस एकतापूर्ण कार्य के शुभारम्भ का प्रस्ताव रखा गया, किन्तु प्रस्ताव कार्यान्वित नहीं हो सका, कारण वही था- अहम्मन्यता एवं व्यक्तिगत स्वार्थवाद। इसके पश्चात् पुनः प्रयास किया गया और स्वामी सुमेधानन्द जी चम्पा वाले के साथ तीन व्यक्तियों स्वामी दिव्यानन्द और मैं (स्वामी विवेकानन्द) की एक समिति का प्रस्ताव बनाकर घोषित किया गया कि ये समिति जो निर्णय लेगी, वह आर्यसमाज के कलह-निवारण में कृतकार्य होगी। किन्तु यहाँ भी निहित स्वार्थों के कारण कुछ अधिकारियों ने इसके निर्णय को मानने में इस समिति को ही नहीं स्वीकार किया और मामला अधर में लम्बित हो गया।

आज ऋषि दयानन्द की द्विजन्म-शताब्दी के अवसर पर आर्यसमाज के उत्थान के लिए विविध प्रकार की योजनाओ का प्रस्ताव आता है तथा भूत का गुणगान करते हुए अनेक घोषणाएँ होती हैं। आर्य समाज के परस्पर-कलह को दूर करने के लिए मथुरा में १९२४-२४ में ऋषि दयानन्द की जन्मशताब्दी मनाने का दृढ़निश्चय किया गया। आर्यों में अति उत्साह था और उसकी पूर्णता के लिए अतिवेग से कार्य प्रारम्भ हुए। इसको देखकर मो. क. गांधी ने, जो अंग्रेजों के प्रच्छन्न क्रीतदास थे, अपनी प्रसिद्ध पत्रिका 'यंग इण्डिया' में २८ मई १९२४ को एक लेख लिखा, जिसमें आर्यसमाज तथा ऋषि दयानन्द के कार्यो की कटु आलोचना करते हुए यहाँ तक लिखा कि ''मैंने सत्यार्थप्रकाश से अधिक निराशाजनक और कोई पुस्तक नहीं पढ़ी...'' इत्यादि। यह ईसाई व इस्लाम के लोगों को संतुष्ट करने के लिए तथा अपने पौराणिक जगत् को भड़काने के लिए किया था, जिसका उत्तर चमूपति जी ने 'आर्य पत्रिका' में अच्छी प्रकार से दिया था। इस कारण मो.क. गांधी अपनी योजना में सफल नहीं हुए और शताब्दी धूमधाम से मनाई गई, किन्तु एक काम अधूरा रह गया और वह यह कि सम्पूर्ण आर्यजगत् में एकता नहीं बन पायी।

पुनः १९३८-३९ में हैदराबाद-सत्याग्रह-आन्दोलन निजाम के अत्याचारों से पीड़ित होने के कारण उसके प्रतीकार के लिए प्रारम्भ किया गया। इस आन्दोलन को रोकने के लिए मो.क. गांधी ने वरिष्ठ आर्यसमाजी नेता घनश्याम गुप्त को भेजा, किन्तु वहाँ भी वीर सावरकर के प्रोत्साहन के कारण घनश्याम गुप्त मुँह लटकाए वापस लौट आए और आन्दोलन तीव्रगति से चल पड़ा, जिसमें हिन्दू महासभा सहित सभी संगठनों ने आर्यसमाज को सहयोग देना प्रारम्भ कर दिया। मो.क.गांधी से यह सहन नहीं हुआ और उन्होंने कहा कि यह सत्याग्रह हिन्दू महासभा के सम्मिलित होने के कारण अब साम्प्रदायिक हो गया है, किन्तु उनके इस कुटिल चाल से भी आन्दोलन प्रभावित नहीं हुआ और तानाशाह निजाम को झुकना पड़ा तथा सत्याग्रह पूर्ण सफल रहा।

आर्यसमाज ने राष्ट्रभाषा हिन्दी, संस्कृत, वेशभूषा तथा अन्य राष्ट्रीय विचारधाराओं के सम्बन्ध में जो कार्य किया वह अतुलनीय है, परन्तु उसकी उपेक्षा करके कुछ लेखक अन्यथा कहते रहते हैं, इसका कारण क्या है? विचारने पर यही ज्ञात होता है कि आर्यसमाज में परस्पर कलह का वातावरण बना हुआ है। यदि वह दूर हो जाए तो आर्यसमाज का ही कायाकल्प नहीं, अपितु सारे विश्व का कायाकल्प हो जाएगा और ऋषि दयानन्द का **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** का स्वप्न साकार होगा। **''पुमान् पुमांसं परिपातु विश्वतः''**, **'अन्योऽन्यमभिहर्यत'** की भावना से ओत प्रोत होकर विश्व एकसूत्र में बँधेगा। सर्वत्र सुख- समृद्धि का साम्राज्य होगा। देखते हैं वह दिन कब आता है और आर्यजनता कब अपने नेताओं के स्वार्थ के चंगुल से छूटकर आगे बढ़ती है?

॥ अस्माकं वीराः उत्तरे भवन्तु ॥

॥ वैदिकधर्मो विजयतेतराम्॥

- कुलाधिपति गुरुकुल प्रभात आश्रम, टीकरी, भोला-झाल, मेरठ (उत्तर प्रदेश)

न किरस्य शचीनां नियन्ता सूनृतानाम्।
न किर्वक्ता न दादिति॥ ८/३२/१५॥

भावार्थ-उस भगवान इन्द्र की शक्तियों का और उसकी सत्य और मीठी वाणियों का नियम बांधने वाला कोई नहीं है। और कोई नहीं कह सकता कि इन्द्र ने मुझे कुछ नहीं दिया, क्योंकि सबको सब कुछ देने वाला वह इन्द्र ही है।

यज्ञ एवं शोध

❒ डॉक्टर विक्रमादित्य गौतम

यज्ञ अथवा अग्निहोत्र आज केवल धार्मिक कर्मकांड तक ही सीमित नहीं रह गया है। यह शोध का विषय भी बन गया है। 'अमेरिका' में यज्ञ पर शोध हुए हैं और प्रायोगिक परीक्षणों से पाया गया है कि वृष्टि, जल एवं वायु की शुद्धि, पर्यावरण संतुलन एवं रोग निवारण में यज्ञ की अहम भूमिका है। चेचक के टीके के आविष्कारक डॉ. हैफकिन का कथन है 'घी जलाने से रोग के कीटाणु मर जाते हैं।' फ्रांस के वैज्ञानिक प्रो. ट्रिलबिर्ट कहते हैं, 'जली हुई शक्कर में वायु शुद्ध करने की बड़ी शक्ति हैं। इससे टी.बी., चेचक, हैजा आदि बीमारियां तुरंत नष्ट हो जाती हैं।' अंग्रेजी शासनकाल में मद्रास के सेनिटरी कमिश्नर डॉ. कर्नल किंग आई.एम.एस. ने कहा, 'घी और चावल में केसर मिलाकर अग्नि में जलाने से प्लेग से बचा जा सकता है।'

आज अत्यधिक धूम्रपान, अंधाधुंद पेट्रोलियम पदार्थों के प्रयोग से बढ़ता प्रदूषण तथा विषैली गैसें चिंता का विषय, जिसका प्रतिकार यज्ञ है। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. स्वामी सत्यप्रकाश ने भी कहा है, 'यज्ञ में बहुत स्वास्थ्यप्रद उपयोगी ओजोन तथा फारमेल्डिहाइड गैसें भी उत्पन्न होती हैं। ओजोन ऑक्सीजन से भी ज्यादा लाभकारी एवं स्वास्थ्यवर्द्धक है। यह ठोस रूप में प्रायः समुद्र के किनारे पाई जाती है, जिसे हम अपने घर में ही यज्ञ से पा सकते हैं।'

हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने वैज्ञानिक आधार पर शोध करके सामग्री व समिधाओं का चयन किया था। जैसे-बड़, पीपल, आम, बिल्व, पलाश, शमी, गूलर, अशोक, पारिजात, आंवला व मौलश्री वृक्षों के समिधाओं का घी सहित यज्ञ-हवन में विधान किया था, जो आज विज्ञान सम्मत है, क्योंकि यज्ञ का उद्देश्य पंचभूतों की शुद्धि है, जो हमारे पर्यावरण का अंग हैं। यज्ञ का वैदिक उद्देश्य भी पर्यावरण शुद्धि एवं संतुलन है। यज्ञ-विज्ञान का नियम है कि जब कोई पदार्थ अग्नि में डाला जाता है तो अग्नि उस पदार्थ के स्थूल रूप को तोड़कर सूक्ष्म बना देती है। इसलिए यजुर्वेद में अग्नि को 'धूरसि' कहा जाता है।

महर्षियों ने इसका अर्थ दिया है कि भौतिक अग्नि पदार्थों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म होने पर उनकी क्रियाशीलता उतनी ही बढ़ जाती है। यह एक वैज्ञानिक सिद्धांत है। जैसे अणु से सूक्ष्म परमाणु और परमाणु से सूक्ष्म इलेक्ट्रान होता है। अतः ये क्रमानुसार एक-दूसरे से ज्यादा क्रियाशील एवं गतिशील है। यज्ञ में यह सिद्धांत एक साथ काम करते हैं। यज्ञ में डाल गई समिधा अग्नि द्वारा विघटति होकर सूक्ष्म बनती है, वहीं दूसरी तरफ वही सूक्ष्म पदार्थ अधिक क्रियाशील एवं प्रभावी होकर विस्तृत क्षेत्र को प्रभावित करते हैं।

एक चम्मच घी एक आदमी खाता है तो उसकी लाभ-हानि सिर्फ खाने वाले आदमी तक ही सीमित है, परंतु यज्ञ कुंड में एक चम्मच घी अनेक व्यक्तियों को लाभ पहुंचाता है। जिस घर में हवन होता है, यज्ञाग्नि के प्रभाव से वहां की वायु गर्म होकर हल्की होकर फैलने लगती है और उस खाली स्थान में यज्ञ से उत्पन्न शुद्ध वायु वहां पहुंच जाती है। इसमें विसरणशीलता का वैज्ञानिक नियम काम करता है। इसलिए हम देखते हैं कि किसी पर या कोई स्थान, जहां यज्ञ हुआ रहता है, वहां कई दिनों तक समिधा की खुशबू विद्यमान रहती है। प्रदूषण आज की विकट समस्या है। इसका कारण एक तो हमारी भोगवती प्रवृत्ति और दूसरा प्राकृतिक संसाधनों का दोहन भी है। आज का बढ़ता तापमान, औद्योगीकरण, वृक्षों की कटाई, पॉलीथीन का उपयोग, जल, वायु, मृदा प्रदूषण चरमावस्था में है, जिसके कारण प्राणियों की रक्षा के लिए संरचित हमारे रक्षा कवच, ओजोन परत में छेद होने लगा है। उद्योगों, कल-कारखानों से गंदगी निकलकर पृथ्वी को दूषित कर रहे हैं बेतरतीब वाहनों से निकलता धुआं, अर्थात कार्बन मोनो-ऑक्साइड गैस से आंखों में जनल, सिरदर्द, अस्थमा, टी.बी. आदि से लोग परेशान हैं। ऐसा लगता है संपूर्ण जैवमंडल विनष्ट हो रहा है। **'ओ पूर्णमदः पूर्णमिदं'** को आधुनिक स्वार्थी, भोगलिप्सा में लिप्त मानव अनसुना करके अपने आपकों ही मारने पर तुला है। ओजोन परत में हुए छेद से सूर्य की प्रचंड गर्मी, विध्वंसकारी पराबैंगनी किरणों के रूप में चर्म रोग, कैंसर, आंखों से अंधा होना आदि का संवाहक बन गई है। ऐसे में इस समस्या के समाधान हेतु प्रयासों के साथ क्या हम एक छोटा-सा प्रयास 'यज्ञ' के रूप में नहीं कर सकते? आइए आज से ही हम सब सामूहिक यज्ञ का संकल्प लें।

(पृष्ठ 9 का शेष)

सभी मनुष्यों व पशु पक्षियों पर दया करनी होगी। उनमें अपनी आत्मा को और अपनी आत्मा में उन सब प्राणियों की आत्माओं को एक दूसरे के समान देखना होगा। यह जानना होगा कि सब प्राणियों की आत्मायें एक समान हैं। सब प्राणियों की रक्षा का व्रत लेना होगा। अपरिग्रह को चरितार्थ करना होगा। ईश्वर मठ, मन्दिर व गिरिजों में नहीं अपितु वह तो साधारण कुटिया व वनों, कन्दराओं तथा नदियों के तट व संगमों के निकट शान्त स्थानों में साधना करने से प्राप्त होता है। इतिहास में ऐसा उल्लेख कहीं नहीं आता कि हमारे ऋषि मुनि महलों व अट्टालिकाओं व बड़े भव्य भवनों में रहकर साधना करते थे। वैदिक काल में वनों व आश्रमों की महत्ता इसीलिये थी कि वहां तप व साधना का अवसर सुलभ होता था। आश्रमों में विद्वानों का सत्संग मिलता था। वनों व आश्रमों में रहकर तपस्या करने वाले ज्ञानियों की शरण में जाकर ही हम साधना कर सकते हैं। अपने निवास को भी तपस्थली बना सकते हैं और आध्यात्मिक उन्नति कर प्राप्तव्य ईश्वर को पा सकते हैं। ऐसा हमें वैदिक साहित्य व ऋषियों व विद्वानों के उपदेशों का अध्ययन कर प्रतीत होता है। संसार में ज्ञान का प्रकाश परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में वेदों के द्वारा ही किया था। वेदों से ही ईश्वर का सत्यस्वरूप प्राप्त होता है। वेदों के ही कुछ सिद्धान्त सभी मत-मतान्तरों में कुछ विख्यातियों के साथ पहुंचे हैं। वेद आज भी सर्वथा शुद्ध एवं पवित्र हैं तथा इतर सभी प्रकार के वैचारिक तथा भावनात्मक प्रदुषणों से रहित हैं। वेद ही ज्ञान तथा ईश्वर विषयक ज्ञान के आदि स्रोत है। वेदों को स्वीकार कर ही संसार में शान्ति स्थापित हो सकती है। हिंसा व दुःखों को दूर किया जा सकता है। वेदों की शिक्षायें संसार के प्रत्येक मनुष्य अर्थात् मनुष्यमात्र के लिये हैं। वेदाध्ययन से आत्मा सहित मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति होती है। मनुष्य अभ्युदय व निःश्रेयस को प्राप्त होता है। वह अपने साध्य ईश्वर को जान पाता है और वैदिक साधनों का सदुपयोग कर अपनी आत्मा के भीतर ही ईश्वर का साक्षात् कर अपने जीवन को सफल कर सकता है। इस वेद मार्ग पर चलने से ही मनुष्य जीवन की सफलता व सार्थकता है।

-196 चुक्खूवाला-2, देहरादून-248001, फोनः 09412985121

The Invaluable Treasure: Understanding the True Worth of Time

❑ **Arun Kumar Gupta**

Imagine there is a bank that deposits money into your account every morning. However, there is a catch: you must spend all the money by the end of the day, as any unspent funds will be withdrawn, and the same amount will be re-deposited the next morning. No remaining balance from the previous day is carried over. What would you do? Most likely, you'd spend every penny. Now, consider that we all have such a bank in our lives. This bank is called "Time." Every morning, 86,400 seconds are credited to our accounts, and by the end of the day, any unused seconds are withdrawn. We cannot carry over the leftover time to the next day. This analogy teaches us the crucial lesson of making the most out of every second we have.

Time is an invaluable resource, one that, once spent, can never be reclaimed. If we do not utilize our time for productive and positive actions, it is essentially wasted. Time's true value is realized when we use it to improve our health, achieve happiness, attain success, and most importantly, help others. By alleviating the sufferings of others and engaging in selfless activities, we can ensure that our time is spent meaningfully. Consider the 24 hours in a day. If we deduct 8 hours for sleep, we are left with 16 hours. Out of these, if we allocate 2 hours for meals and daily routines and another 3 hours for commuting, we have about 11 hours remaining. This is the time we must cherish and use wisely. Whether it is for personal growth, spiritual happiness, or contributing to society, every second counts.

Spiritual happiness is a higher form of contentment that comes when we rise above selfish desires and think of collective well-being. It is achieved by engaging in activities that benefit not only ourselves but also the community, such as participating in religious ceremonies, community service, or simply helping those in need. A famous philosopher once said, "One for all, and all for one." This statement underscores the importance of unity and collective effort. When we work for the common good, the benefits are manifold, affecting our families, communities, and even nations positively.

The co"cep" of "Sab" (everything) is particularly relevant in this context. It teaches us to think beyond personal gains and consider the broader impact of our actions. This formula can be instrumental in fostering harmony within families and strengthening organizations. In today's competitive world, where individualism often leads to fragmented families and strained relationships, the "Sab" principle can be a remedy. By inculcating this philosophy into our daily lives, many interpersonal and societal problems can be mitigated.

The value of time can be better appreciated through various scenarios: Ask a student who has failed a grade about the value of one year. Ask a mother who gave birth to a premature baby the value of one month. Ask the editor of a weekly magazine the value of one week. Ask a person waiting for someone about the value of one hour. Ask someone who just missed their train about the value of one minute. Ask someone who just avoided an accident about the value of one second. Ask an Olympic athlete who won a silver medal instead of a gold by milliseconds.

The adage "time waits for no one" Is a powerful reminder that our days are numbered. Yesterday is history, tomorrow is uncertain, and today is a gift – that's why it is called the present. Embracing this perspective can lead to a more fulfilling and meaningful life. Living each moment fully, with joy, confidence, and purpose, is essential. It requires us to move beyond selfish interests and contribute positively to the world around us. Time, once gone, never returns. Thus, every second must be cherished and used wisely.

Time's value also extends to our professional lives. Efficient time management is a crucial skill in today's fast-paced work environment. Prioritizing tasks, setting goals, and avoiding procrastination can lead to higher productivity and job satisfaction. Successful individuals and organizations recognize the importance of time and employ strategies to make the most of it. They understand that time is a finite resource and that every moment spent idly is an opportunity lost.

Furthermore, time is a great equalizer. Regardless of one's wealth, status, or background, everyone has the same 24 hours in a day. How we choose to spend these hours defines our path and our legacy. Those who utilize their time wisely often achieve their goals and lead more satisfying lives. They invest time in learning, building relationships, and pursuing passions, which yields long-term benefits. On the other hand, those who squander time often find themselves unfulfilled and regretful.

The significance of time is also evident in our personal relationships. Spending quality time with loved ones strengthens bonds and creates lasting memories. In a world

where digital distractions are prevalent, dedicating time to family and friends shows that we value them. Meaningful conversations, shared experiences, and simple gestures of kindness can deepen our connections and enhance our emotional well-being.

To truly appreciate the value of time, we must also recognize the importance of self-care. Balancing work, family, and personal interests is essential for maintaining physical and mental health. Allocating time for relaxation, exercise, and hobbies helps reduce stress and increases overall life satisfaction. It is crucial to understand that taking care of ourselves enables us to be more effective in all areas of our lives.

In essence, the true value of time surpasses that of money. While money can be earned, lost, and regained, time, once lost, is irretrievable. Therefore, it is crucial to use our time judiciously, engaging in activities that bring joy, health, success, and contribute to the welfare of others. By adopting a selfless approach and prioritizing spiritual and social deeds, we can ensure that our time is spent in the most meaningful way possible. Living by the principle of "one for all and all for one" can transform our lives, families, and societies. It fosters unity, reduces conflicts, and creates a supportive environment where everyone can thrive. In today's fast-paced world, where time seems to slip away unnoticed, it is imperative to recognize its value and make every moment count.

So, let's embrace the gift of time, use it wisely, and live each day to the fullest. After all, time is indeed more valuable than money. In a world where we often measure worth by material possessions, it is time to shift our perspective and acknowledge that the true treasure lies in the moments we have. Time is the canvas on which we paint our lives, and how we choose to use it defines the masterpiece we create.

Note: Author is President of Arya SamajDayanand Marg, City Chowk, Jammu

एक प्रेरणा परिवार के एक बालक को गुरुकुल में पढ़ाएं अथवा गुरुकुल के एक ब्रह्मचारी का वार्षिक व्यय देवें

अन्तर्राष्ट्रीय उपदेशक महाविद्यालय टंकारा, जहां इस समय 110 ब्रह्मचारी अध्ययनरत हैं, जिन्हें वैदिक मान्यताओं के प्रचार एवं कर्मकाण्डीय संस्कारों हेतु तैयार किया जाता है। आज की आवश्यकता है कि सुयोग्य धर्माचार्यों की संख्या अधिक से अधिक हो। आप सभी दानी महानुभावों से प्रार्थना है कि अपनी आने वाली पीढ़ी को वैदिक संस्कारों से ओत-प्रोत करने हेतु इन ब्रह्मचारियों के एक वर्ष के अध्ययन का व्यय दान स्वरूप ट्रस्ट को दें। यह ऋषि ऋण से उऋण होने में आपकी आहुति होगी। **एक ब्रह्मचारी का एक वर्ष का अध्ययन/वस्त्र/खानपान का व्यय 20,000/- रुपये है।** आपसे प्रार्थना है कि अपनी ओर से अथवा अपनी संस्थाओं की ओर से कम से कम एक ब्रह्मचारी के अध्ययन व्यय की सहयोग राशि **'श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा'** के नाम चैक/ ड्राफ्ट केवल खाते में दिल्ली कार्यालय के पते पर भिजवाकर पुण्यार्जन करें।

टंकारा ट्रस्ट को दी जाने वाली राशि आयकर से मुक्त है।

निवेदकः- योगेश मुंजाल (कार्यकारी प्रधान) **अजय सहगल** (मन्त्री)

गौ-दान : महा-दान

श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा द्वारा संचालित अन्तर्राष्ट्रीय उपदेशक महाविद्यालय में ब्रह्मचारियों कि दिन- प्रतिदिन बढ़ती संख्या के कारण टंकारा स्थित 'गौशाला' से प्राप्त दूध ब्रह्मचारियों हेतु पर्याप्त नहीं हो पा रहा है। इस कारण ट्रस्ट ने यह निश्चय किया कि तुरन्त नयी गायों को खरीद लिया जाये ताकि ब्रह्मचारियों को पर्याप्त मात्रा में दूध उपलब्ध कराया जा सके। **वर्तमान में अच्छी गाय 75000/- रूपये के लगभग प्राप्त हो रही है।**

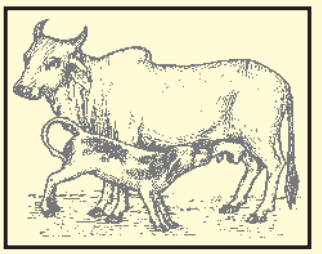

टंकारा स्थित गौशाला हेतु भारत के असंख्य आर्य परिवारों एवं आर्य संस्थाओं की ओर से **25,000/-** रुपये गाय की खरीद हेतु सहयोग राशि भेज रहे है। 3 सहयोगी प्राप्त होते ही गाय खरीदी जाती है। गुरुकुल में ब्रह्मचारियों की बढ़ती संख्या को देखते हुए एवं कच्छ में गर्म वातावरण होने के कारण गौओं का कम दूध देने के कारण अभी भी गायों की आवश्यकता है। दानी महानुभावों से निवेदन है कि इस पुण्य कार्य में अपनी श्रद्धानुसार आहुति डाल कर पुण्यार्जन करें। आप इस पुण्य कार्य के लिए राशि **श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा**, के नाम चैक/ ड्राफ्ट द्वारा केवल खाते में आर्य समाज (अनारकली), मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-110001 पर भिजवाकर कृतार्थ करें।

टंकारा ट्रस्ट को दी जाने वाली राशि आयकर से मुक्त है।

निवेदकः- योगेश मुंजाल (कार्यकारी प्रधान) **अजय सहगल** (मन्त्री)

ધર્મનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ

રમેશચન્દ્ર મહેતા

વર્તમાનમાં મૂળ ધર્મનો વિરોધ રાજકીય અને ક્યાંક ક્યાંક વૈચારિક ક્ષેત્રમાં થઈ રહ્યો છે. તેના મૂળમાં જોઈએ તો ધર્મના વાસ્તવિક સ્વરૂપને ન સમજવું. જો વાસ્તવિક સ્વરૂપ સમજાઈ જાય તો કોઈ જ ધર્મનો વિરોધ નહીં કરે. આવો આપણે ધર્મના વાસ્તવિક સ્વરૂપને સમજવાનો પ્રયત્ન કરીએ.

ધર્મ શબ્દ 'ધૃ' ધાતુમાથી બન્યો છે. જેનો અર્થ છે – ધારણ કરવું.

ધારણાદ્ધર્મઃ એટલે કે જે સહુને ધારણ કરે એ ધર્મ છે, અથવા તો જેને સહુકોઈ ધારણ કરી શકે. જેને ધારણ કર્યા સિવાય કોઈનો પણ છુટકો નથી, જેને ધારણ કરવાનો કો પણ ઇન્કાર ન કરી શકે એને ધર્મ કહે છે. જેમ કે સૂર્યોદય થાય છે એમ કહેવાનો કોઈ ઈન્કાર નથી કરી શકતું.

બીજી વાત એ છે કે ધર્મ સમ્પૂર્ણ સંસારમાં એક જ છે, જુદાજુદા નહીં. જેમ સૂર્ય સહુકોઈ માટે એક જ છે.

મનુસ્મૃતિમાં ક્રિયાત્મક ધર્મનું વર્ણન કરતા કહ્યું છે –

જેમકે - ધૃતિઃ ક્ષમા દમોऽઅસ્તેયં શૌચમિન્દ્રિય નિગ્રહઃ।

ધીર્વિધા સત્યમ ક્રોધો દશકં ધર્મ લક્ષણમ્।।

૧ ધૃતિ – ધીરજ ધારણ કરવી

૨ ક્ષમા – નિર્બળ પ્રાણીમાત્ર માટે દયા ભાવ રાખવો, ક્ષમા વિરોનું આભૂષણ છે તો નિર્બળોનું દૂષણ પણ છે.

૩ દમ – મનને વશમાં રાખવું એ દમ છે. મનને વશમાં રાખ્યા વિના કોઈપણ કાર્યમાં સફળતા નથ મળતી.

૪ અસ્તેય – અસાવધાન માણસની કોઈપણ વસ્તુ ચોરી લેવી, કોઈની વસ્તુ લુટી લેવી કે અસાવધાનની વસ્તુ વિવિધ રીતે છળ-કપટથી ચોરી લેવી. વેદનો આદેશ છે કે "મા ગૃદ્ધઃ કસ્ય સ્વિદ્ધનમ્" કોઈના પણ ધનનો અનધિકાર લોભ ન કરવો.

૫ શૌચ – જળ (પાણી)થી શરીરની, સત્યથી મનની, વિધા અને તપથી આત્માની અને જ્ઞાન દ્વારા બુદ્ધિની શુદ્ધિ કરવા શૌચ કહેવાય છે.

૬ ઇન્દ્રિય નિગ્રહ – ઇન્દ્રિઓને વશમાં રાખવી, રૂપ, રસ, ગન્ધ, સ્પર્શ આદિ વિષયોના મર્યાદાથી વિરુદ્ધ સેવનથી દૂર રહેવું. યાદ રાખો વિષ ખાવાથી માણસ મરી જાય છે પરન્તુ વિષયોના સ્મરણ માત્રથી જ માનવનો નાશ થઈ જાય છે.

૭ ધીઃ – અર્થાત્ આત્મા અને બુદ્ધીને અનુકૂળ સમજી વિચારીને કાર્ય કરવા. બુદ્ધીથી વિરુદ્ધ કાર્યો કરવાથી બચવું.

૮ વિધા – શ્રેષ્ઠ વેદાદિ શાસ્ત્રોનું પ્રાપ્ત કરવું અને તદાનુસાર આચરણ કરવાને વિધા કહે છે.

૯ – સત્ય-મન, વચન, કર્મની અનુકૂળતાનું નામ સત્ય છે.

૧૦ – અક્રોધ – કોઈની ઉપર પણ ધર્માનુકૂળ કારણ વિના ક્રોધ ન કરવો કે ન વેર રાખવું.

નીતિ શાસ્ત્રમાં નીચેના લક્ષણ કહ્યા છે –

ઈજ્યાધ્યયન દાનાનીં તપઃ સત્યં ધૃતિ ક્ષમા।

અલોભ ઈતિ માર્ગોऽયં ધર્મસ્યાષ્ટવિધઃ સ્મૃતઃ।।

અર્થાત્ યજ્ઞ કરવા, સ્વાધ્યાય કરવો, દાન આપવું, તપ કરવું, સત્યાચરણ રાખવું, ધીરજ, ક્ષમાભાવ રાખવા અને લોભ ન કરવો આ ધર્મના આઠ સક્ષણ છે. કરો.

૨ ધર્મના બીજા લક્ષણઃ-

શ્રૂયતાં ધર્મ સર્વસ્વં, શ્રુત્વા ચૈવાવધાર્યતામ્।

આત્મનઃ પ્રતિકૂલાનિ પરેષાં ન સમાચરેત્।।

ધર્મનો સાર સાંભળો અને સાંભળીને મનમાં ધારણ કરો. બીજાનો જે વ્યવહાર ત્વને સારો નથી લાગતો એવો વ્યવહાર તમે બીજા સાથે પણ ન

૩ વેદાજ્ઞાનું પાલન કરવું ધર્મ છે – ધર્માદપેતં યત્ક્વિત્મ યધપિ સ્યાન્મ્મહાફલમ્।

ન તત સેવેત મેધાવી ન તદ્વિત મિહોચ્યતે।।

અર્થાત્ બુદ્ધિમાન વ્યક્તે ધર્મરહિત (વેદ વિરુદ્ધ) મહાફળ આપવા વાળા કર્મનું સેવન ન કરે. કારણ કે ધર્મ વિરુદ્ધ કર્મ ક્યારેય હિતકારક નથી હોતા. એવા કર્મ કર્તાનો સમૂળ નાશ કરી દે છે.

૪ ધર્મનું ચોથું લક્ષણ છે "સીમાનો ऽનતિક્રમણં યત્તત્ ધર્મમ્" સીમા કે મર્યાનું ઉલ્લંઘન ન કરવું ધર્મ છે. દરેક જણે પોત-પોતાની મર્યાદામાં રહેવું જોઈએ. સ્વકીય કર્તવ્યમાં તત્પર રહેવું. એનું ઉલ્લંઘન ક્યારેય ન કરવું .

૫ પાંચમું લક્ષણ –પ્રાણીમાત્રનું કલ્યાણ કરવું, જેમાં પ્રાણીમાત્રનું હિત થાય, કોઈનું પણ અહિત ન થાય એને ધર્મ કહે છે.

યથા ય એવ શ્રેયસ્કરઃ સ એવ ધર્મ શબ્દેન ઉચ્યતે. (ભાષ્ય સૂત્ર 12)

જે કાર્યથી સર્વનું કલ્યાણ થાય એને ધર્મ કહેવાય છે. એટલે જ જૂના વખતમાં સવારે ઉઠીને લોકો પ્રાર્થના કરતા કે હે ભગવાન સહુનું ભલું કરજો.

(पृष्ठ 1 का शेष)
का रंग पकड़ते है, जबकि महापुरुष जीवन की ललकार का जीवन के आह्वान का उत्तर निर्भीकता से देते हैं। वे जीवन की समस्याओं के साथ डटकर सामना करते हैं, जूझते-जूझते प्राणों की भी बाजी लगाने में पीछे नहीं हटते, वे जमाने को पलट देते हैं। महर्षि अपने गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य कर जब देश के युद्ध आंगन में उतरे तो चहुदिशि समाज और देश में ललकार ही ललकार सुनाई पड़ रही थी। कौन सी समस्या थी जो देश, धर्म, समाज के वट वृक्ष को घुन की तरह नहीं खा रही थी। ये देश और समाज, धर्म की प्रत्येक समस्या का समाधान हेतु हर अखाड़े में छाती तान कर डटे रहे। ऋषि ने समाज की पीड़ा उसके रोगों को अनुभव किया। हिन्दुओं में रूढ़िवाद, जात-पांत, नारी शिक्षा का अधिकार, तुष्टीकरण, भ्रष्टाचार एवं सभी संकीर्णताएं, अस्पृश्यता मिटाने पर जितनी गहरी चोट दयानन्द ने की नई पीढ़ी के लिये नि:सन्देह अनुकरणी है। गुरु दण्डी की कसौटी पर शिष्य दयानन्द शुद्धतम स्वर्ण रूप सिद्ध हुए। उन्हें दयानन्द में उस क्षमता के दर्शन हुए जो धूर्त राजाओं को सत्य का दर्पण दिखा सकती थी। उन्होंने अपना सारा ज्ञान, वैभव, विरासत के रूप में अपने उस योग्य और समर्थ उत्तराधिकारी को दिये। ऐतिहासिक साक्ष्य मौजूद हैं। दयानन्द ने सभी सुख संसाधनों को ठुकरा संघर्ष मार्ग को हृदयहार बनाया। महर्षि ने निर्दिष्ट कार्यक्रम के अभियान को पूर्णतया चलाया। स्वराज्य और स्वदेशी का उद्घोष कर राष्ट्र के पुनर्जागरण का शंखनाद किया। अपनी आध्यात्मिक विरासत के रूप में आर्य समाज की स्थापना की। कालजयी अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना कर सुषुप्त भारतवासियों को झंकझोर कर जगाया। वैदिक संस्कृति के पुनरूत्थान हेतु एक सबल सशक्त फौज खड़ी कर दी तथा नव जागरण के मसीहा बने।

14 श्रावण संवत् 1936 में स्वामी दयानन्द बांस बरेली गए। वहां उनके व्याख्यानों के अन्दर फिसाद को रोकने के लिये कोतवाल को हुकुम मिला। मुंशीराम के पिता जी भी वहां स्वयं खिचें चले गए। प्रवचनों का ऐसा प्रभाव पड़ा कि नास्तिकता की सारी संशय निवृत्ति हो गई और अगले व्याख्यानों को सुनने हेतु मुंशीराम को भी उत्साहित किया। मुंशीराम दूसरे दिन गए व्याख्यान परमात्मा के निजनाम 'ओ३म्' पर था। सुना, मन गद्गद हो गया। अगस्त 25, 26 व 27 को ऋषि दयानन्द के पादरी स्काट के साथ तीन शास्त्रार्थ, पुनर्जन्म, ईश्वरावतार और मनुष्य के पाप बिना फल भुगते क्षमित होते हैं अथवा नहीं। इसी प्रकार 30 श्रावण से 9 भाद्रपद (15 से 25 अगस्त) तक ऋषि जीवन सम्बन्धी अनेकों घटनाएं देखीं एवं सुनी, जिनका प्रभाव स्थाई रूप में मुंशीराम के हृदय पर अंकित हुआ कि पूर्ण जीवन उसे भूल नहीं सके। मुंशीराम जी का कहना है कि स्वामी जी के उपदेशों ने मुझे मोहित तो कर दिया और सोचता हूं कि यदि ईश्वर और वेद के ढकोसले को स्वामी तिलांजति दे दे तो कोई विद्वान् इनकी तर्कना शक्ति के आगे टिक नहीं सकता। मुंशीराम ने प्रश्नोत्तर रूप में अभिमान से ईश्वर के अस्तित्व पर आक्षेप किये परन्तु पांच मिनट में जिह्वा पर मुहर लग गई। तीन बार प्रयास कर के प्रश्नोत्तर किये, अन्तिम उत्तर में हार मान गए और बोले कि आपकी तर्क शक्ति बड़ी प्रबल है। स्वामी जी पहले हंसे फिर गम्भीर स्वर में कहा तुम्हारा ईश्वर पर विश्वास तब होगा जब वह प्रभु स्वयं तुम्हें विश्वासी बना देंगे। पुन: कठोपनिषद् का वाक्य बोला:- **नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैषवृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनू स्वाम्।।** मुंशीराम से श्रद्धानन्द और फिर स्वामी श्रगनन्द कहलाने के गौरव को प्राप्त करने में वे स्वयं लिखते हैं (कल्याण मार्ग के पथिक) में क्या था? मैं क्या बन गया? और अब क्या हूं? सब तुम्हारी ही कृपा का परिणाम है। परमपिता ये यही प्रार्थना है कि वह मुझे तुम्हारा सच्चा शिष्य बनने की शक्ति प्रदान करें। अपने जीवन को वैसा ही बना कर अमर हो गए। अपने पिताजी की अन्तिम घड़ी में उन्हें ईशोपनिषद्, कठोपनिषद् सुनाया। उनके भजन सुनने की इच्छा पर स्वयं कबीर जी का निर्वाण भावनाओं का भजन सुनाया। पिताजी के संकेत पर यज्ञ के लिये सामग्री लाने दूसरे मुंश को भेज दिया। सामग्री आने में देरी हो रही थी तो वेदमंत्रों के उच्चारण का स्मरण दिलाया। वेद मंत्रों को सुनते-सुनते ही उन्होंने प्राण त्याग दिये। जो यज्ञ सम्बन्धी सामग्री आई वह पिताजी के नृयज्ञ में प्रयोग की गई। मुंशीराम का राशि नाम बृहस्पति था। यथा नाम तथा गुण सिद्ध हुए। ऋषि ऋण से उऋण होने हेतु गुरूकुल की स्थापना की जो आर्य समाज के सिद्धान्तों को परिपुष्ट और **कृण्वन्तो विश्वमार्यम्** के साथ भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत, देश और धर्म की स्वतंत्रता में भागीदारी एवं हिन्दू समाज की आस्था का केन्द्र है। महर्षि ने विलुप्त आर्ष पद्धति के पठन-पाठन का आरम्भ किया, उसकी विधि भी निर्दिष्ट की। आर्ष ग्रन्थों से ही मानव का कल्याण है और स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरूकुल की स्थापना कर न जाने कितने आचार्यो बृहस्पतियों के पिता बने और त्याग तपस्यापूर्ण वैदिक ऋषियों की उत्सर्गमयी परम्परा में स्वयं प्रकाश पुरोधा बन भारत माता की स्वतंत्रता तथा विश्व मानवता की राह में बलिदान हो गए। सूर्योदय के बाद सूर्य की किरणें जिस प्रकार विश्व के सारे अंधकार को दूर कर देती हैं। उसी प्रकार व्याकरण सूर्य दण्डी जी, कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के रचयिता महर्षि दयानन्द सरस्वती, देश की स्वतंत्रता और गुरूकुल के संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द जी वैदिक व्योम में दिवाकर, प्रभाकर और सुधाकर है। इनकी सत्य विधाएं मानव समाज के सारे भ्रंम, अंधविश्वास, अज्ञान, तिमिरावस्था दूर कर सत्य ज्ञान (वेद) का चिर प्रकाश दे रही है।

आर्य समाज के सौजन्य से विश्व में सत्य राज्य, शान्ति व्यवस्था तभी सम्भव है। सारा विश्व एक परिवार बन कर, आनन्द, सुख के साथ भौतिक आध्यात्मिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करें। आज पुन: भ्रष्टाचार, आतंकवाद, पाखण्डवाद, अराजकता, दानवता अमरबेल की तरह बढ़ती जा रही है। देश टूट रहा है। आर्य समाज, आर्यवीर दल को अपना पुत्र रूप स्वार्थतावन स्वीकार नहीं कर रहा। दुष्परिणाम स्वरूप वैदिक संस्कृति अधोगति में जा रही है। भावी पीढ़ी को संस्कारित करने हेतु वेदों की मनुर्भव की शिक्षा को ज्योति करें। विरजानन्द ने अपनी कुटिया का द्वारा खोला था, भारत के भाग्य का मानवता के सौभाग्य का द्वारा खुला था जिसने हम सबको मानवता का संदेश दिया था। आओ! गुरुवर के कार्यों को सर्वात्मना समर्पित होकर पूर्ण करने का संकल्प लें।

- 5-क-11, जवाहर नगर, जयपुर-302004

आवश्यक सूचना

आपका लोकप्रिय आर्य मर्यादाओं का समाचार पत्र ''टंकारा समाचार'' इंटरनेट एवम् वट्सअप पर उपलब्ध। सभी सदस्य पाठकों से अनुरोध है कि अपना ई-मेल पता एवम् वट्सअप मोबाइल नम्बर **9560688950** पर **सदस्य संख्या एवम् नाम सहित** भेजे ताकि हम पंजीकृत कर सके जिससे कि आपको उपरोक्त माध्यम से जोड़ा जा सके। **- ट्रस्ट मन्त्री एवम् सम्पादक**

A "CHAMPION"
is defined not by their wins
but by how they can recover
when the fall.

टंकारा समाचार अक्टूबर 2024
Delhi Postal R.No. DL (ND)-11/6037/2024-25-26
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसेंस नं0 U(C) 231/2024-26
Posted at LPC Delhi RMS, Delhi-06 on 1/2-10-2024
R.N.I. No 68339/98 प्रकाशन तिथि: 23.09.2024

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक–अजय सहगल द्वारा मयंक प्रिंटर्स, 2199/63, नाईवाला, करोल बाग, नई दिल्ली–5 दूरभाष : 41548503 से छपवाकर कार्यालय महर्षि दयानन्द सरस्वती स्मारक ट्रस्ट टंकारा, आर्य समाज (अनारकली), मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–1 दूरभाष : 23360059, 23362110 से प्रकाशित। संपादक : अजय